दादा की कहानियाँ

सारस की टाँग

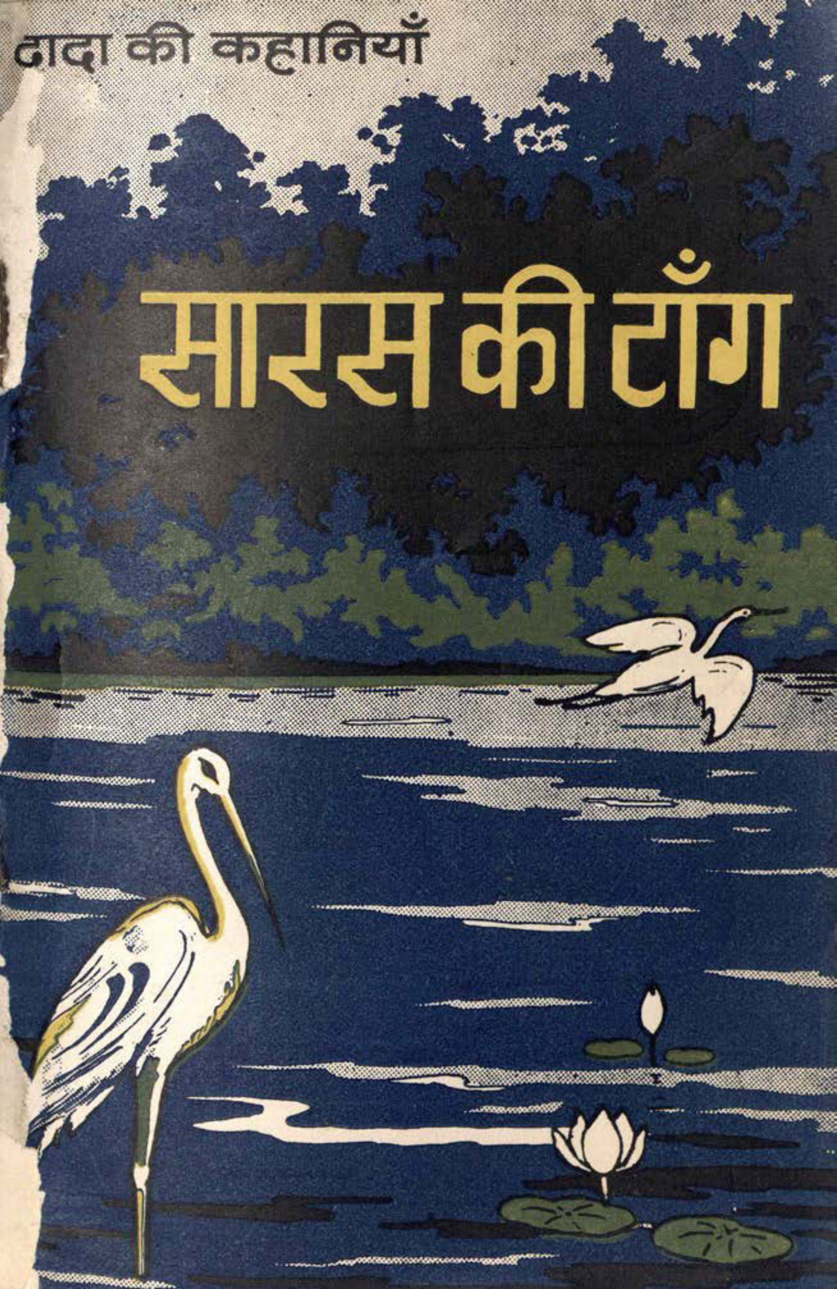

दादा की कहानियाँ

सारस की टाँग

•

दादा धर्माधिकारी

•

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक
मन्त्री, सर्व-सेवा-संघ,
राजघाट,
वाराणसी-२२१००१

प्रवचन :
आचार्य दादा धर्माधिकारी
सम्पादन :
शरदकुमार साधक

संस्करण : पहला
प्रतियाँ : ३,०००
जुलाई, १९७९
मूल्य : दो रुपये

मुद्रक
शिवलाल प्रिन्टर्स,
नायक बाजार,
वाराणसी-२२१००१

प्रकाशकीय

अनगिनत उतार-चढ़ावों से गुजरकर सभ्यता के गौरीशंकर को छूनेवाली मानव-सभ्यता पर हम चाहे जितना गर्व करें और अपने चरण बृहस्पति-लोक में भी स्थापित कर लें, तो भी आम आदमी को ऐसा लगता है कि वह अपने में एकाकी और निरीह है। आखिर क्यों? क्या सौहार्द और समन्वयमूलक संस्कृति का मूल स्रोत सूख गया है?

छोटी-छोटी कहानियों में आचार्य दादा धर्माधिकारी ने इसका उत्तर दिया है। इससे पाठक आसानी से समझ सकते हैं कि व्यापकता और विस्तार में मनुष्य को भले ही सुख-सुविधाएँ कम उपलब्ध हों, लेकिन उसके सुख और आनन्द में वृद्धि होती है तथा घुटन एवं निरीहता घटती है।

कहानी की कहानी

"मैंने गरीब की झोपड़ी के दर्शन किये। वहाँ एक माता बच्चे को दूध पिला रही थी। उसके बाद उसने बच्चे का चुम्बन लिया और उसे सुला दिया। फिर कल की बासी रोटी लेकर खाने बैठी। इतने में एक अंधा बच्चा भीख माँगते हुए आ गया। माँ ने अपना खाना रोका और वह रोटी उस अंधे बच्चे को दे दी। फिर स्वयं सो रही। मैंने देखा कि वह साक्षात् करुणा सो रही थी।"

खलील जिब्रान की अनुभूति से हमें यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि सच्चा कहानीकार कौन है?

मौन को मुखर करनेवाले फरीदुद्दीन अत्तार कहते हैं :

"उस दिन मैंने लकड़हारे को बोझ से, एक धनी को रुपयों की

थैली से, एक ज्ञानी को ज्ञान से, एक सुन्दरी को सुन्दरता से और एक सम्राट् को अपनी ही तलवार से चकनाचूर होते देखा। चारों तरफ इन्हीं सब लोगों का क्रन्दन सुनकर जब मेरा मन डूब रहा था तो मैंने एक फकीर को देखा, जिसकी एक मुस्कान सूरज उगाती थी, दूसरी चाँद जगाती थी और तीसरी फूल खिलाती थी।"

फकीरी क्या है––यह विनोबाजी ऐतिहासिक घटनाओं से समझाते हैं। वे बताते हैं : "शंकराचार्य प्रतिदिन अपने शिष्यों को ब्रह्म-विद्या पढ़ाया करते थे। एक दिन पढ़ाई के समय कोई जिज्ञासु आया और पूछ बैठा : 'आपके सभी शिष्यों में से अधिक विद्या किसने अर्जित की है ?'

'उसने, जो इस समय पानी भरने गया है।'––कहकर आचार्य पढ़ाने में मशगूल हो गये।

आश्चर्य में डूबा प्रश्नकर्ता कुएँ की ओर चला तो पानी का घड़ा उठाये एक विद्यार्थी को आता देखकर पूछा : 'महात्मन् ! आपका नाम ·········· ?'

घड़ा नीचे रखते हुए बोला वह : 'हस्तामलक'।"

हस्तामलक यानी हथेली में रखे हुए आँवले की भाँति दुनिया को देखने-सुनने की क्षमतावाला।

नहीं कहा जा सकता कि प्रश्नकर्ता का शंकराचार्य के शिष्य से समाधान हुआ या नहीं, लेकिन यह सच है कि हम ऐसे युग में आ पहुँचे हैं, जहाँ करुणा को कुरेदकर जगाना होगा, कल्पना को यथार्थ की धरती देनी होगी और ज्ञान को आचरण का विषय बनाना होगा।

इसके लिए कहानियों की नयी विधा प्रस्तुत करनी होगी। कौन करेगा यह काम ? जिस तरह के कथा-साहित्य से आज बाजार पटा है, उससे क्या दिशा मिलती है ?

आज हर आदमी, बिना मेहनत किये भोग-विलास और सम्पन्नता

का सुख चाहने लगा है। इस चाह से भले-बुरे का विवेक घट गया और स्पर्धा बढ़ गयी है। हर जगह होड़ लगी है। जो उस होड़ में आगे बढ़े हैं, उनकी लालसा दिन दूनी और रात चौगुनी हो रही है। और जो इस होड़ में पिछड़ रहे हैं, उनका जीवन-रस सूख गया है। ऐसे समय वैसी दिशासूचक कहानियाँ चाहिए, जिनमें हेय, ज्ञेय और उपादेय का बोध हो।

आचार्य दादा धर्माधिकारी कहानीकार नहीं हैं, लेकिन उनकी संवेदनशील अनुभूतियाँ इतनी प्रखर हैं कि उनमें सारा कथा-रस आ जाता है। हजारों-लाखों श्रोता जानते हैं कि दादा से कैसे मौन मुखरित होता है। एक बार की बात है। अहिंसा पर व्याख्यान होना था। आयोजक काफी तगड़े व्यक्ति थे। वे सबसे कह रहे थे कि अगर सभा में कोई बोला, किसीने खुसर-पुसर की तो मेरे हाथ में डंडा होगा। आप शान्त बैठिये। अब मैं दादा से अनुरोध करता हूँ कि अहिंसा पर व्याख्यान दे हमारा मार्ग-दर्शन करें।

दादा बिना बोले उठ गये, क्योंकि उसके बाद अहिंसा की क्या व्याख्या होती ?

एक बार एक बड़े आदमी ने दादा से कहा : "संविधान में ही गो-हत्याबंदी आ जानी चाहिए। ऐसा नहीं होगा तो हम उपवास करेंगे।"

दादा ने अपनी सहमति व्यक्त की और कहा : "आप ठीक कह रहे हैं। गो-हत्या पर प्रतिबन्ध लगना ही चाहिए।"

मेजबान ने अपनी बात पर और जोर देने के लिए बताया : "मैं गाय के घी-दूध का ही उपयोग करता हूँ।"

उनका बात कहने का ढंग एक पास बैठे मित्र को अखर गया। पूछ बैठा वह : "जब आप गाय के घी-दूध के इतने हिमायती हैं तो डालडा के कारखाने क्यों चलाते हैं ?"

व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ताओं के चलते हमारा व्यक्तित्व

खंडित हो गया। उसे अखंडित बनाने की व्यावहारिक साधना करनेवाले दादा इतने महान् हैं कि उनके आसपास जीवन्त कथाएँ खड़ी हो रही हैं, जिनमें सृष्टि की रहस्यात्मकता भी है और नये इतिहास की रचना भी।

दादा अक्सर अपने व्याख्यानों में छोटी-छोटी कहानियों का प्रयोग करते हैं। उन्हें सुनते समय श्रोता भाव-विभोर हो जाते हैं। तथ्य से सत्य की ओर अग्रसर करनेवाली उनकी कुछ कहानियाँ बहन तारा भागवत ने संग्रहीत कीं और कुछ मेरे संग्रह में थीं, जिन्हें मिलाकर यह पुस्तक तैयार हुई है। सम्पादन का जो सहज सुखद सौभाग्य मिला, उसके लिए मैं श्रीनरेन्द्रभाई (मंत्री, सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन) का आभारी हूँ।

आज के बीभत्स रूप को बदलने और जन-शक्ति निर्माण करने की दृष्टि से इस कृति में बुद्धिपूर्वक भाईचारा और मेल-मिलाप बढ़ाने का युगबोध मिलता है। इससे पाठकों का यह भ्रम दूर हो जाना चाहिए कि युद्धस्य वार्ता रम्या ''''''लड़ाई की कहानी रोचक होती है। दादा का विश्वास है कि मिलन की कथा उससे कम रोचक नहीं होती। काशी में राम-रावण-युद्ध देखने के लिए जितने लोग इकट्ठे होते हैं, उससे अधिक लोग भरत-मिलाप देखने आते हैं। बिछुड़े भाइयों का मिलन देखने इतने उत्साह से लोग क्यों आते हैं? इसलिए कि यह कहानी लोगों के मिलाप की कहानी है।

दादा के कथासूत्र से पाठक स्वयं महसूस करेंगे कि अनेक कहानियों के हम सब जीवन्त पात्र हैं। मेल-मिलाप के साथ यदि हम अखंडित व्यक्तित्व रखें तो जब भी जीवन की संध्या आयेगी, वह अपने साथ जगमगाता दीपक लायेगी, जिससे सभी रोशन हो सकेंगे।

–शरदकुमार साधक

अनुक्रम

१.	सच्चा क्रान्तिकारी	१
२.	कानून-भंग	२
३.	लिंकन	३
४.	गोखले, तिलक, गांधी	४
५.	इन्सानियत की खोज	५
६.	गरीबी कौन चुरायेगा ?	६
७.	गुरु की खोज	७
८.	तू भी रानी, मैं भी रानी	८
९.	न्याय भूखे का	१०
१०.	प्रश्न अनेक, उत्तर एक	१३
११.	बाँटने की कला	१४
१२.	बरफी का डब्बा	१६
१३.	अशना और पिपासा	१७
१४.	कल्पवृक्ष	१९
१५.	व्यापार का सूत्र	२०
१६.	हाथों का ढेर	२१
१७.	बाजार-भाव	२२
१८.	धोबी का गधा	२३
१९.	काम और आराम	२५
२०.	मोटापा	२६

२१.	शादी साहूकार की बेटी की	२७
२२.	नीति न बेचनेवाला भिखारी	२९
२३.	तुम कौन हो ?	३०
२४.	नौकरशाही	३२
२५.	दो न्यायाधीश	३४
२६.	गैरकानूनी वाल्टेयर	३५
२७.	संविधान-संशोधन	३६
२८.	ब्रिटिश रूल	३८
२९.	कानूनी शराब	३९
३०.	जैसा किया, वैसा भोगो	४०
३१.	बादशाह के गुलाम	४२
३२.	ताजमहल	४३
३३	बृहल्लांगुलाचार्य का मत	४४
३४.	यथाशक्ति आचार	४६
३५.	जैसी अक्ल, वैसी सृष्टि	४८
३६.	मैं कह रहा था न ?	४९
३७.	औसत की अपूर्णता	५०
३८.	सारस की एक टाँग	५१
३९.	घोड़े का राज	५३
४०.	बिछौने पर मौत	५४
४१.	दृष्टि-भेद	५६
४२.	राजाजी की रसिकता	५८
४३.	सिनेमा का उपयोग	५९
४४.	चित्र एक : चेहरे दो	६०
४५.	शिक्षक का स्थान	६२
४६.	अनुत्तरित प्रश्न	६३

●

१. सच्चा क्रान्तिकारी

एक था मनुष्य। वह भगवान् को नही मानता था। लोग उसे शैतान का शिष्य कहते थे। वह उम्रभर लोगों की भलाई करता रहा। किसीको दुःख हुआ, इसे चैन नहीं। कहीं आग लगी, यह दौड़ पड़ा। किसी पर संकट आया और यह न पहुँचा हो, ऐसा कभी नहीं हुआ।

दूसरों की भलाई करते समय कभी-कभी प्रचलित नीति-नियम के विरुद्ध भी काम हो जाता था। ऐसे ही एक प्रसंग में उसे फाँसी की सजा मिल गयी।

जल्लाद जब उसे फाँसी पर टाँगने के लिए ले जा रहा था तो पुरोहित आया।

पुरोहित ने कहा—"इस वक्त तुझे अपने पापों की कैफियत देनी है। तू अपने अपराध स्वीकार कर और भगवान् से क्षमा माँग ले।"

"मैं तो भगवान् को जानता ही नहीं।"—शैतान के शिष्य ने कहा—"महाशय, क्या होता है भगवान्? किससे क्षमा माँगूं और किसलिए क्षमा माँगूं?"

पुरोहित के सामने उसकी सेवा साकार हो गयी।

वह वात्सल्यभरे दिल से बोला—"अरे, तूने उम्रभर सत्कर्म किये हैं। अब भगवान् को मान ले। वह तुझे दुष्कर्मों से मुक्ति दिला देगा।"

"मैं क्या जानूँ सत्कर्म और दुष्कर्म?"—शिष्य ने अविचल स्वर में कहा—"मुझे खबर ही नहीं है कि सत्कर्म आदि होते

क्या हैं और कैसे किये जाते हैं ? मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि जहाँ-जहाँ दु:ख दीखा वहाँ मैं दौड़ जाता था, क्योंकि मुझसे दु:ख देखा नहीं जाता था और न सहा जाता था।

"दुनिया के हर बन्दे का दु:ख मेरा दु:ख है। वह मुझसे सहा नहीं जाता।"

यही तो सच्ची आस्तिकता है। यही आस्तिकता मनुष्य को क्रान्तिकारी बनाती है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि जितने भी क्रान्तिकारी होते हैं, वे अगर आस्तिक न हों तो क्रान्तिकारी हो ही नहीं सकते, फिर वे भगवान् का नाम लें या न लें—यह समझना पुरोहित के वश की बात न थी।

जल्लाद द्वारा ले जाये जा रहे शैतान के शिष्य के ओझल होने पर पुरोहित भारी मन से लौट आया।

फाँसी के फंदे पर झूलते समय भी शिष्य के पाँव न भारी हुए, न डगमगाये। ●

२. कानून-भंग

सॉक्रेटीस के जीवन का एक प्रसंग है। वह जेल में रखा गया, तब उसका साझीदार आकर कहने लगा—"मित्र, उठो और अभी जेल से भाग चलो।"

"नहीं, मैं जेल से नहीं भाग सकता।"—सॉक्रेटीस ने कहा—"ऐसे भागना गलत है।"

साथी ने समझाया—"आपको जबरन जेल में ठूँस दिया गया है। यह इन लोगों का अन्याय है। इसलिए भाग चलना गलत नहीं है।"

जो स्वयं नियमरूप है और सामाजिकता जिसका स्वभाव है, वही कानून-भंग कर सकता है।

"मैंने इनका सिर्फ एक कानून तोड़ा है, क्योंकि वह कानून अयोग्य है, ऐसा मुझे लगा। बाकी के नियम-कानून क्यों तोड़ूँ ?" —सॉक्रेटीस बोला—"और फिर अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। दो-चार वर्षों में मरने ही वाला हूँ। स्वर्ग का कानून मुझसे कहेगा कि सॉक्रेटीस, तुम कानून-भंग करते हो इसलिए तुम्हारे लिए यह स्थान नहीं है।"

साथी समझ गया कि आत्मप्रेरणा के बिना कानून-भंग के लिए सॉक्रेटीस को सहमत करना सम्भव नहीं है। ●

३. लिंकन

एक दफा एक छोटे लड़के ने अपनी माँ से कहा—"मैं अब्राहम लिंकन को देखना चाहता हूँ। कैसा है वह हमारा राष्ट्र-पति, जिसके बारे में तरह-तरह की बातें सुनने में आती हैं ?"

माँ बोली—"आज ही लिंकन का जुलूस निकलनेवाला है। तुम स्वयं चलकर देख लो कि वह कैसा है।"

जिस रास्ते लिंकन गुजरनेवाले थे, माँ-बेटे वहीं खड़े हो गये।

सवारी नजदीक आयी तो माँ ने संकेत कर बताया कि "देख लिंकन !"

लड़के ने उनकी तरफ देखा और एकदम बोल पड़ा—"ही इज ए वेरी कॉमन लुकिंग मैन।"—यह तो बिलकुल सामान्य मनुष्य लग रहा है।

लिंकन के कानों में वे शब्द पड़े तो लौटकर लड़के की पीठ थपथपायी और उन्होंने कहा—"मेरे दोस्त! भगवान् को सामान्य मनुष्य अच्छे लगते हैं। इसीलिए वह उनको इतनी तादाद में बनाता है।"

सामान्य और असामान्य का फर्क उजागर होते देख लड़के की माँ गद्गद हो गयी।

३. गोखले, तिलक, गांधी

स्वराज्य के दिनों में गोखले, तिलक और गांधीजी के नाम जनता की जबान पर थे। सब उनकी कार्य-पद्धति जानने-सुनने को आतुर रहते थे। इससे उनके बारे में किंवदन्तियाँ चल निकलीं। ऐसा ही एक काल्पनिक प्रसंग है।

एक दफा गोखले, तिलक और गांधी को ट्रेन में एक ही डब्बे में जगह मिल गयी।

उस डब्बे के बाहर तख्ती लगी थी—'गोरों के लिए सुरक्षित।'

गोखले ने कहा—"यह ठीक नहीं है। मैं गार्ड के पास जाकर तख्ती निकलवाने के लिए कहूँगा। उसने अगर न माना तो स्टेशन मास्टर के पास जाऊँगा। वह भी नहीं मानेगा तो रेल-मंत्री तक जाऊँगा। वह भी नहीं मानेगा तो फिर वॉयसराय के पास जाऊँगा।"

इस पर तिलक ने कहा—"इन सबके पास जाने की जरूरत क्या है? हम यह तख्ती ही निकालकर फेंक देंगे।"

गांधी ने कहा—"नहीं, नहीं। बोर्ड भी रहने दें और बैठेंगे भी यहीं। किसीके पास जाने की जरूरत भी नहीं है और बोर्ड निकालने की भी जरूरत नहीं है। यह डब्बा इस प्रकार से सुरक्षित रखने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए हम यहाँ से उठें नहीं।"

यही है गांधी के सत्याग्रह का मर्म। जो सार्वजनिक रूप से असामाजिक है, अन्याय है, अनीति है, उसे यथाशक्ति दुरुस्त करना शुरू कर दो। क्योंकि केवल कुछ लोगों की सुविधा के लिए बनाये कानून और संविधान को मान्य करके चलना कायरता है।

कहते हैं कि उनकी वार्ता पूरी होने से पूर्व ही गाड़ी चल दी और उनकी यात्रा सकुशल सम्पन्न हो गयी। ●

५. इन्सानियत की खोज

एक फकीर एक दफा एक साहूकार के पास पहुँचा।

'अलख निरंजन' कहते हुए उसने अपना हाथ फैला दिया।

साहूकार ने उड़ती नजर डाली और कह दिया—"आगे बढ़ो।"

"मालिक, कुछ हुकुम हो जाता तो अच्छा था।"—फकीर ने आरजू की।

"सुनते नहीं ?"—साहूकार डाँटते हुए बोला—"यहाँ कोई आदमी नहीं है।"

"हमने सोचा, गद्दी पर बैठा है सो आदमी है।"—फकीर

ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहा—"मैं आदमी की ही खोज में हूँ। यहाँ अगर वह नहीं है तो मैं आगे बढ़ता हूँ। अलख निरंजन।"

६. गरीबी कौन चुरायेगा ?

आदिवासियों के गाँव में जाने का अवसर मिल गया। उनके पास बड़े मकान कहाँ ? हम लोगों को जिस कमरे में ठहराया गया था, उसमें भी न खिड़की थी, न जाली। घुटन-सी होने लगी। उसीमें बच्चे दौड़ रहे थे, यहाँ से वहाँ।

घरवालों को लगा, मुझे वहाँ सुलाना ठीक नहीं है। बाजू की एक झोंपड़ी साफ करवाकर मेरा बिछौना लगा दिया गया।

घरवालों ने कहा—"इससे अच्छी जगह तो हमारे पास है नहीं। इसीको साफ कर लिया है।"

मैं बोला—"साफ किया तो अच्छा ही किया, लेकिन इसमें दरवाजा नहीं है।"

"दरवाजे की क्या जरूरत है ?"

"क्यों ? क्या इस तरफ चोर नहीं हैं ?"

"चोर तो बहुत हैं।"

"तो फिर घर में दरवाजा क्यों नहीं रखा ?"

"हम इतने भाग्यशाली कहाँ कि हमारे घर में चोर आये ?"

"क्यों ?"

"हम लोगों के पास एक ही चीज है—गरीबी, और उसे चुरानेवाले कोई नहीं हैं।"

बिलकुल अशिक्षित मनुष्य के साथ बातचीत करने में मुझे रस आने लगा। मैंने कहा—"तब तो तुम लोगों को पुलिस या फौज की भी जरूरत नहीं लगती होगी।"

"हमें क्या जरूरत पड़नेवाली है इनकी।"

"क्या इस तरफ कभी पुलिस नहीं आती ?"

"आती है।"

"कब ?"

"जब आप लोगों की घड़ी या और कोई चीज खो जाती है तो उसे खोजने के लिए पुलिस हम लोगों के पास पहुँचती है।"

"पुलिस और फौज क्या अच्छी होती है ?"

"अच्छी ही होती है। वह आपकी अमीरी बचाती है और हमारी गरीबी भी। वह दोनों की सेवा करती है।"

उसके बेलाग उत्तरों में मेरे प्रश्न सचमुच समाहित होकर रह गये। ●

७. गुरु की खोज

एक राजा ने जाहिर किया कि मुझे गुरु की आवश्यकता है। जो-जो गुरु बनना चाहें, कृपया आ जायँ।

जब चपरासी की 'आवश्यकता' निकलती है तब हजारों अर्जियाँ आ जाती हैं। तब गुरु जैसे महत्त्वपूर्ण पद का उम्मीदवार कौन नहीं होना चाहेगा और वह भी राजगुरु-पद का उम्मीदवार !

उम्मीदवारों की भीड़ लग गयी।

राजा ने सबका सत्कार किया और कहा—"राजधानी के बाहर एक लंबा-चौड़ा मैदान है। आप सब वहाँ अपना-अपना डेरा डाल दीजिये। इसमें जिसका घेरा सबसे बड़ा होगा, मैं उसीको अपना गुरु बनाऊँगा।"

हरएक ने अपनी-अपनी जगह घेर ली। कुछ तो ऐसे निकले कि जिनके घेरे बड़ी-से-बड़ी युनिवर्सिटी से भी बड़े हो गये।

सात दिन बाद राजा आया। एक-एक का घेरा देखते चला। चलते-चलते उसे एक पेड़ के नीचे बैठा संन्यासी मिला। पूछा उससे—"महात्मन्! आप यहाँ चुपचाप क्यों बैठे हैं? आपका घेरा कहाँ है?"

"यह क्षितिज ही मेरा घेरा है।" संन्यासी का उत्तर सुनते ही राजा की गरदन झुक गयी और उसे लगा कि छोटे-छोटे घेरों में बैठे बौनों के बीच उसे ऐसे गुरु मिल गये हैं, जिनकी ऊँचाई की थाह पाना सचमुच कठिन है।

गुरु ने शिष्य को सीने से लगा लिया। ●

८. तू भी रानी, मैं भी रानी

एक घर में पाँच स्त्रियाँ थीं। पाँचों व्यवहार-कुशल। उनका एक-दूसरे के प्रति आदर था।

एक दिन उन्होंने एक सभा की और सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव भी पारित कर लिया कि वे रानियाँ कहलायेंगी।

रानियों के लिए चाँदी के पाँच झूले बने। उनमें जरीदार-

लड़ीदार रस्सियाँ लगायी गयीं। हरएक रानी बन-ठनकर बड़े मिज़ाज के साथ एक-एक झूले पर बैठ गयी।

सवाल उठा कि अब झुलाये कौन? घर में कोई नौकर नहीं। पाँचों रानियाँ! झूला झुलाना रानियों की शान के खिलाफ था।

मँजे हुए राजनीतिज्ञों की तरह पाँचों रानियों ने तय किया कि इस सवाल को छोड़ दिया जाय।

तात्कालिक प्रश्न आगे के लिए टल गया।

दोपहर में भूख लगी, प्यास लगी। यह सवाल कैसे छोड़ा जाता? भूख-प्यास से सबके होश ठिकाने आ गये।

वर्गहीन समाज में जो मेहनत करते हैं, वे ही मालिक होते हैं और जो मालिक होते हैं, वे भी मेहनत करते हैं। सभी मालिक होते हैं, सभी मेहनती।

रानियों ने बुद्धि का उपयोग कर दूसरा प्रस्ताव पारित किया कि वे एक-दूसरी को पानी पिलायेंगी, खाना खिलायेंगी और झूला भी झुलायेंगी।

नतीजा यह हुआ कि सबकी गौरव-रक्षा हो गयी और जीवन की समस्याएँ भी हल होने लगीं।

पाँचों की कुशलता देखकर लोग दंग रह गये। हर जबान पर यह वाक्य घर कर गया :

'सब कोई रानी, सब कोई सेवक'

६. न्याय भूखे का

किसी गाँव में एक ब्राह्मणदेवता रहते थे। वे बड़े भोजन-प्रिय थे। भोजन का निमंत्रण स्वीकार करना उनका पेशा था।

पंडितजी के पड़ोस में एक ग्वालिन रहती थी। वह आये दिन उनको निमंत्रित किया करती थी।

एक बार श्राद्ध के दिन ब्राह्मणदेवता का न्योता हुआ। दक्षिणा मिलनेवाली थी।

ब्राह्मणदेवता ने बड़ी ईमानदारी और लगन से खाया। कोई कसर नहीं रखी। आकंठ भोजन पाया। दक्षिणा लेकर पान चबाते हुए ज्यों ही रवाना होने लगे कि ग्वालिन बोली—"महाराजजी, एक खोवे का गोला आपके नाम का रह गया है। इसे भी लेते जाइये, नहीं तो मुझे पाप लगेगा।"

पंडितजी खोवे का गोला भला कैसे छोड़ते? उन्होंने घर ले जाकर बड़ी हिफाजत से छींके पर रख दिया।

किया हुआ भोजन कैसे पचे, यह वे अच्छी तरह जानते थे। उसके लिए कड़ी-सी माजून बनाकर खा ली। हल्का-सा नशा हुआ। उस नशे में बैठे ब्राह्मणदेवता सोचने लगे कि कल इस खोवे का क्या बने? लड्डू या मोदक?

इतने में कहीं से बिलाव आया और लपका उस खोवे के गोले की तरफ।

पंडितजी दहाड़े—"अरे, तू बड़ा चोर है, लुटेरा है। दिन-दहाड़े मेरे सामने से मेरा खोवा ले जाने आया है?"

नशे की करामात ऐसी कि बिलाव भी बोलने लगा।

"महाराज, आप उलटी बातें न करें। आपके पेट में गले तक अन्न भरा है। तिल रखने की भी जगह नहीं है। तब इस खोवा के हकदार आप कैसे हैं और कैसे यह खोवा आपका है?" पंडितजी की आँखों में आँख डालकर बिलाव ने कहा—"मेरे पेट में तीन दिन से भूख की आग धधक रही है। मुझे अन्न का एक कण भी नहीं मिला है। इसलिए इस खोवे पर मेरा अधिकार है।"

पंडितजी में हिम्मत नहीं कि डंडा मारकर बिलाव को भगा दें और बिलाव में साहस नहीं कि खोवा का गोला छीन ले जाय। इसलिए क्रिया-प्रतिक्रिया की चर्चा का दौर शुरू हो गया।

ब्राह्मणदेवता बोले—"कमबख्त, तू मुझे ज्ञान सिखाने लगा। तू नास्तिक है। तू बोलशेविक हो गया है। तू कम्युनिस्ट हो गया है। धर्म के खिलाफ बात करता है, नीति और कानून के खिलाफ बात करता है।"

बिलाव दृढ़ता से बोला—"ब्राह्मणदेवता, जो धर्म, जो नीति, जो कानून अन्न पर भूखों का अधिकार बतलाने के बदले उसका अधिकार बतलाता है, जिसका पेट ठसाठस भरा हो, वह धर्म धर्म नहीं है, वह नीति नीति नहीं है, वह कानून कानून नहीं है।"

"बच्चू, तुम सीधी तरह नहीं मानोगे, ठहरो।"—पंडित-जी झल्लाकर बोले—"मैं तुम पर अदालत में नालिश करूँगा।

संविधान ने मुझे कुछ मूलभूत अधिकार दिये हैं। उनका आधार लेकर मैं सर्वोच्च न्यायालय तक तुम्हें घसीट ले जाऊँगा।"

बिलाव गंभीरता से बोला—"मुझे मंजूर है। आप जरूर मुकदमा चलाइये। लेकिन....."

"लेकिन क्या ?" पंडितजी पूछ बैठे।

"गुजारिश है कि आप मेरी दो शर्तें सुन लें।"—बिलाव ने कहा।

"पहली शर्त यह है कि नालिश दायर करने से पहले आप खुद सात दिन का उपवास कीजिये। उन सात दिनों में अगर आपने पड़ोस की ग्वालिन के यहाँ से दूध चुराकर नहीं पिया तो मुझे आपकी फरियाद कबूल है।

"दूसरी शर्त यह है कि जिस हाकिम के इजलास में मेरा मामला चले, वह भी सात दिन का उपवास करे। उन सात दिनों में अगर उसने अपनी मेमसाहबा की आलमारी में से बिस्कुट चुराकर नहीं खाये तो उस अदालत का फैसला भी मुझे मंजूर है।"

पंडितजी के मुँह में ताला पड़ गया। काटो तो खून नहीं। वे पोथी-पत्रों में आज तक बिलाव के प्रश्नों का जवाब ही खोज रहे हैं।

और भूखे बिलाव को रह-रहकर याद आ जाती है खोवे के गोले की। उसकी समझ में यह नहीं आता कि यह कौनसा न्याय है, जहाँ एक खूब भरपेट खाकर और संग्रह करे तथा पचाने के लिए दवा खोजे और दूसरा इतना भूखा रहे कि भूख मिटाने के लिए चोरी करे।

'भूखे भजन न होहिं गोपाला। यह लो अपनी कंठी माला' कहनेवाले भक्त के आते ही बिलाव भाग खड़ा हुआ और पंडितजी अपने काम में लग गये। ●

१०. प्रश्न अनेक, उत्तर एक

अमीर खुसरो के आसपास दरबारियों की भीड़ लगी रहती थी। वे अपने-आपको कम बुद्धिमान् नहीं समझते थे। उनमें अपना बुद्धि-कौशल दिखाने का शौक था।

एक दफा अमीर खुसरो ने कहा—"मैं तीन सवाल पूछ रहा हूँ, मगर मुझे जवाब एक ही चाहिए।"

सवाल हैं—

१. घोड़ा अड़ा क्यों ?
२. पान सड़े क्यों ?
३. रोटी जली क्यों ?

सारे दरबारी दाढ़ी सहलाने लग गये। जवाब किसीसे नहीं बना।

सबके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती देखकर महज देहाती किसान खड़ा हुआ और बोला—"हुजूर, मैं कुछ कहूँ ?"

"फेरे नहीं गये इसलिए" स्वीकृति मिलने के साथ ही सभी आलिमफाजिलों के लिए व्याख्या करते हुए उसने बताया—

"घोड़ा फेरा नहीं गया, अड़ गया।
पान फेरे नहीं गये, सड़ गये।
रोटी फेरी नहीं गयी, जल गयी।" ●

११. बाँटने की कला

दो भाई थे। उनसे कहा गया कि सृष्टि की रचना करो। वे दोनों जुट गये। हर भाई अपनी कृति सर्वश्रेष्ठ बनाने का प्रयास करने लगा।

छोटे भाई ने प्राणी बनाये। अपनी सारी करामात खर्च कर डाली। किसीको उसने पंखों से विभूषित किया, किसीको रोएँ या ऊन से। किसीको सींग दिये, किसीको दाँत और किसीको नाखून। किसीको हिम्मत दी, किसीको चालाकी। किसीको ताकत दी, किसीको स्फूर्ति।

बड़े भाई ने एक मनुष्य बनाया, जिसे देने के लिए उसके पास कुछ नहीं बचा। दूसरे प्राणियों एवं सृष्टि से मुकाबला करने के लिए वह इसके शरीर में कोई रचना नहीं कर पाया। इसलिए मनुष्य बना भी तो 'बेचारा'। उसके पास कुछ नहीं था। दाँत भी नहीं, नाखून भी नहीं, सींग भी नहीं, पंख और रोएँ भी नहीं। बड़ा भाई हैरान कि मनुष्य के लिए क्या करे? बड़ी मुश्किल से इधर-उधर खोजने पर उसे आग मिली, जो मनुष्य को दे दी।

मनुष्य ने पूछा—"इसका उपयोग ?"

निर्माता बोला—"तेरे पास कुछ तो रहे, जिससे तू दूसरे जानवरों से अपना संरक्षण कर सके।"

लेकिन मनुष्य का इतने से क्या काम चलता ?

उसने आगे की तैयारी की।

वह तपस्या करने लगा। उसे देखकर दूसरे मनुष्य ने भी वैसा ही करना शुरू कर दिया।

भगवान् प्रसन्न हुए और तपस्वी को वरदान दे दिया कि "तू अमर होगा।"

अनुकरण करनेवाले से कहा—"तुझमें पुरुषार्थ होगा, बुद्धिमत्ता होगी, तरह-तरह के गुण होंगे। लेकिन एक कमी रह जायगी कि तू अल्पायु होगा।"

अमर होनेवाले को इससे बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि "भगवान् ने दिया भी तो डेढ़ वरदान, पूरे दो नहीं दिये। क्या किया जाय?"

"बुद्धि और कला का उपयोग किया जाय।"—दूसरा बोला—"मनुष्य की जीवनी शक्ति शस्त्र में नहीं, यंत्र में नहीं, राज्य में नहीं, वरन् परस्पर बाँटने की उसकी कला में है।"

दोनों की पुकार पर भगवान् फिर प्रकट हुए। पूछा—"क्या बात है? अब और क्या चाहिए?"

"एक वरदान और दे दो तो हमारा काम चल जायगा।"—समवेत स्वर में अनुनय-विनय की उन्होंने।

"कौनसा वरदान?"

"यह कि अमरता बाँट सकें और अल्पायु में भी शामिल हो सकें हम।"

"तथास्तु" कहकर भगवान् अन्तर्धान हुए। इसके साथ ही सृष्टि-रचना करनेवाले भाइयों ने समझ लिया कि अनुपम कृति किसकी है? ●

१२. बरफी का डब्बा

हमें एक बार किसीके लिए बरफी भेजनी थी। वह डब्बे में रख दी गयी।

पता चला कि एक लड़का वहीं जा रहा है, जहाँ बरफी भेजनी थी।

मैंने सुझाया कि इस लड़के के साथ बरफी भेज दें।

"नहीं, नहीं" पास बैठे भाई ने तत्काल प्रतिवाद किया— "इस लड़के के साथ भेजने से वहाँ पहुँच नहीं सकेगी।"

"क्यों नहीं पहुँचेगी ?"

उन्होंने कहा,–"यह जीभ का थोड़ा ढीला है और अभी भूखा भी है। बरफी स्वादिष्ट है। यह डब्बा भी खुला है। अब बोलो, कुछ बाकी रहा ?"

संपत्ति किसे सौंपी जाती है, जिसके मन में संपत्ति का लोभ न हो।

सत्ता किसे सौंपेंगे, जिसको सत्ता की आकांक्षा न हो।

बरफी भेजने में भी यही कसौटी है।

किसीने कहा—"कोई एक चाचा उसी गाँव जानेवाले हैं। उनके साथ भेज दें तो ठीक से पहुँच जायगी।"

"ये बूढ़े हैं तो क्या हुआ ? वृद्धों की जीभ में स्वाद नहीं होता ?"

"होता है"—उसने खुलासा किया—"लेकिन बात यह है कि चाचाजी गो-व्रती हैं। ये सिर्फ गाय का ही दूध-दही खाते हैं और मिल की शक्कर भी नहीं खाते।"

"ठीक-ठीक। तब तो बरफी सुरक्षित है।" कहकर विरोध करनेवालों ने डब्बा उन तक पहुँचाना मंजूर कर लिया। ●

१३. अशना और पिपासा

भगवान् ने सृष्टि का निर्माण किया और सारे जीव पैदा किये। उनके साथ बहुत सी वासनाएँ और इच्छाएँ पैदा कीं; उनमें दो मूलभूत प्रबल वासनाएँ हैं। एक का नाम अशना है और दूसरी का पिपासा—खाने की इच्छा और पीने की इच्छा।

खाने की इच्छा अलग चीज है और भूख अलग चीज।

पीने की इच्छा अलग चीज है और प्यास अलग चीज।

दोनों विधाता से बोलीं—"हमें रहने के लिए आश्रय दो।"

विधाता ने गाय की ओर इंगित कर कहा—"देखो, यह मेरा अश्राप जानवर है। इतना नम्र, इतना गरीब, इतना सौम्य, इतना निरुपद्रवी मैंने दूसरा जानवर नहीं बनाया। इसलिए जब पृथ्वी को भी रूप लेना होता है तो इसीका रूप लेती है। अतः तुम इसीके पास रहो।"

"माना कि यह बहुत अच्छी है"—अशना-पिपासा एक ही साथ बोलीं—"लेकिन हमारे काम की नहीं है।"

"क्यों?"

"इसके एक ही तरफ दाँत हैं। यह क्या खायेगी? दूसरी

बात यह है कि यह खाया हुआ दुबारा खाती है, जुगाली करती है, पागुर करती है। यह हमारे किस काम की ?"

विधाता ने घोड़ा लाकर खड़ा कर दिया। जानवरों में सबसे सुन्दर।

उसका तुर्रा, खड़े रहने की अकड़ और शान देखकर वे दोनों खुश हो गयीं। बोलीं—"गाय से अच्छा है यह। इसके दोनों तरफ दाँत हैं, जुगाली भी नहीं करता, लेकिन……"

"कहते-कहते रुक क्यों गयीं ?"

"इसलिए कि इसमें भी एक ऐब है।"

"कौन-सा ऐब ?"

"यह भूख लगेगी तो खायेगा और प्यास लगेगी तो पीयेगा। इसके आश्रित हम कैसे रह सकती हैं ?"

होते-होते भगवान् ने मनुष्य लाकर खड़ा कर दिया।

वे बोलीं—"बस, यह है बिलकुल वैसा, जैसा हम चाहती हैं।"

"क्यों ?"

"यह बगैर भूख खा सकता है और बगैर प्यास पी सकता है।"

सहपान और सहभोजन का सामाजिक मूल्य मनुष्य के समाधान का उत्स है, जिसे अशना और पिपासा अपना इच्छित स्थान मानकर संतुष्ट हो गयीं। ●

१४. कल्पवृक्ष

एक दफा एक थका राहगीर विश्राम के लिए कल्पवृक्ष की छाया में बैठ गया।

कुछ देर सुस्ताने के बाद उसके मुँह से निकला—"क्या ही अच्छा होता, यदि कोई माई का लाल पानी पिला देता?"

और

चाँदी की झारी में पानी हाजिर।

राहगीर तृप्त हो गया।

कुछ देर बाद सोचने लगा—"अब खाना मिल जाय तो कितना मजा आ जाय।"

कल्पवृक्ष का प्रभाव कहाँ जाता?

सोने की थाली में खाना आ गया।

पेट-पूजा करने के बाद राहगीर ने कहा—'अब सोने के लिए बिछौना मिल जाय तो बहार आ जायगी।"

तुरन्त मच्छरदानीवाला बिछौना सामने आ गया।

बिना परिश्रम के सुख-सुविधाओं की इफरात हो तो दिमाग में भूत नाचने लगते हैं।

बिछौने पर लेटते ही शैतान सवार हो गया और मन का संदेह बोल उठा—"कहीं यह सब भूत का खेल तो नहीं है?"

कहनेभर की देर थी कि एक विकराल भूत हाजिर हो गया।

सुख-साधनों की भीड़ से घबराये यात्री के मुँह से निकला—"क्या मुझे खाओगे ?"

भूत के 'हाँ' कहने के साथ ही राही समाप्त और उसका सफर भी समाप्त हो गया।

१५. व्यापार का सूत्र

उन दिनों मैं वर्धा (बजाजवाड़ी) में रहता था। वहाँ जमनालालजी के साथ हमेशा चर्चा होती रहती थी। वे व्यापारी थे। उनकी निपुणता प्रसिद्ध है। एक बार उन्होंने मुझसे पूछ लिया—"जानते हो, व्यापार का सूत्र क्या है ?"

"मैं क्या जानूँ ? मैंने तो कभी व्यापार किया नहीं।"

"इसमें एक नियम है"—वे समझाने लगे—"पैसे लेने हों तो पहले पैसे ले लो, फिर रसीद दो और पैसे देने हों तो पहले रसीद ले लो फिर पैसे दो।"

इस पर सोचता हुआ मैं घर आ गया। और अपने काम में लग गया।

मेरे साथ एक लड़का रहता था। उसने हमारी सारी बातें सुन ली थीं। मैं तो बात भूल गया, लेकिन उसके लिए भूलना इतना आसान न था।

दूसरे दिन मुझे नागपुर जाना था। मैंने उस लड़के से कहा कि स्टेशन पर जाकर टिकट खरीद लो।

वह पैसे लेकर चला गया।

एक घंटा बीता, दो घंटे बीते; ट्रेन का समय होने लगा, मगर वह टिकट लेकर नहीं लौटा।

आखिर मैं ही देखने पहुँचा कि बात क्या है।

टिकट की खिड़की के पास खड़ा मिला वह।

मैंने पूछा—"क्या हो गया है ?"

कहने लगा—"टिकट बाबू कहते हैं पहले पैसे दो, फिर टिकट दूँगा। मैं कहता हूँ, पहले टिकट दो, फिर पैसे दूँगा। जमनालालजी ने व्यापार का यही नियम बताया था कि पैसे देने हों तो पहले रसीद ले लो। मैं वही कर रहा हूँ।"

जिसे लोग व्यवहार कहते हैं, वह मिथ्या है। उसके आधार पर कब तक चला जा सकता है ? परस्पर विश्वास न हो तो दुनिया नहीं टिकेगी। विश्वास जीवन का मूल्य है, क्योंकि उसके लिए कारण की जरूरत नहीं है।

मैंने लड़के को समझाया—"विश्वास करो और पैसा दो। टिकट मिल जायगा। अन्यथा दुनिया के अन्त तक अड़े ही रह जाओगे।"

लड़का धीरे से बोला—"लेकिन अपना व्यापार का सूत्र ?"

गाड़ी की सीटी ने मुझे उसका उत्तर देने का अवसर ही नहीं दिया। ●

१६. हाथों का ढेर

पार्लमेंटरी पद्धति में सारी ताकत और सारी अक्ल हाथ जुटाने में खर्च होती देखकर एक सिपाही का दिमाग फिर गया। उसने दुश्मनों के दो हजार हाथ काटकर अपने सेनापति के सामने पेश कर दिये।

सेनापति बहुत खुश हुआ—"दरअसल तू बड़ा बहादुर सिपाही है, जो दुश्मनों के इतने हाथ काट लाया।"

क्षणभर रुककर बोला—"क्या ही अच्छा होता, अगर तू इसके बदले एक हजार सिर लाता। तब पता चल जाता कि दुश्मनों में से कौन-कौन मारे गये ?"

दिल और दिमाग से सरोकार न रखनेवाले पार्लमेंटरी सदस्य की भाँति सिपाही ने अदब के साथ कहा—"हुजूर, मैं तो सिर ही काटकर लानेवाला था, लेकिन मन की मन में रह गयी। सिर पहले ही कोई काटकर ले गया था। इसलिए मजबूरन मुझे हाथ लाने पड़े।"

सैनिक और सेनापति एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गये।

१७. बाजार-भाव

एक साहूकार था। हालत कुछ खस्ता थी। बुरे दिन कैसे कटें ? क्या करे ? क्या खाये ? सोचते-सोचते उसका ध्यान एक सोने की मूर्ति की ओर गया, जिसे कभी गणपति की पूजा करनेवाले बाप-दादों ने बनवाया था।

गणेशजी की मूर्ति सर्राफे में पहुँच गयी।

सर्राफ से पूछा—"क्या भाव लोगे ?"

पुराना जमाना था। दूकानदार ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और समझ लिया कि चोर नहीं है तो जवाब दिया—"पचीस रुपये तोला।"

साहूकार कहने लगा—"यह तो चूहे का भाव हुआ, लेकिन गणेशजी का क्या भाव दोगे ?"

सर्राफ बोला—"चूहा और गणेश, एक ही भाव हैं।"

"तुझे कुछ तमीज है ? कोई शऊर है ? कैसी बात करता है ?" —झल्लाते हुए साहूकार कहने लगा—"अरे, गणेशजी देवता हैं और चूहा क्षुद्र जन्तु। यदि जरा भी अक्ल होती तो दोनों का एक भाव न बतलाता। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।"

सर्राफ ने समझाया—"बाजार में आने पर गणेशजी गणेशजी नहीं रहे और चूहा चूहा नहीं रहा।"

साहूकार के गले यह बात बड़ी मुश्किल से उतरी कि गणेशजी यदि विशिष्ट देवता होते तो मंदिर से उठकर बाजार में न जाते और चूहा क्षुद्र जंतु होता तो बिल से बाजार में न आता। बाजार बाजार है। बाजार में हर वस्तु को नापने का अपना पैमाना है और अपना मूल्य।

१८. धोबी का गधा

एक धोबी और एक वकील पड़ोसी थे। जब पड़ोसी समान न हों तो कभी-कभी बड़ी मजेदार घटना घट जाती है। धोबी का गधा अक्सर रात में रेंका करता और वकील साहब की नींद हराम हो जाती। इससे एक दिन बात बढ़ गयी।

वकील साहब ने धोबी को धमकाकर कहा—"देखो, अपने गधे का रेंकना बन्द करो, वरना पछताना पड़ेगा।"

"वकील साहब, आप बड़े आदमी हैं और समझदार भी।"

—धोबी ने गिड़गिड़ाकर अनुरोध किया—"आप समझ सकते हैं कि गधा आखिर गधा है। यह मेरे समझाने से कैसे मानेगा?"

ताव में आकर वकील साहब ने धोबी पर अदालत में नालिश कर दी।

धोबी ने भी एक होशियार वकील कर लिया।

पेशी के दिन धोबी का वकील मुद्दई वकील साहब से जिरह करने लगा। पूछा—"वकील साहब, आप यह बताने की कृपा करें कि इस धोबी का गधा रात में कितनी बार रेंकता है।"

"कोई पाँच दफा।"

"हर बार में कितनी देर तक रेंकता होगा?"

"ज्यादा-से-ज्यादा तीन मिनट तक।"

"आप तो फर्माते हैं कि सारी रात नींद मुहाल हो जाती है, लेकिन इस हिसाब से तो महज १५ मिनट होते हैं।"

"आप समझते नहीं हैं।"—मुद्दई वकील ने झल्लाकर कहा—"अब गधा रेंका, अब गधा रेंका, इस इन्तजार में सारी रात गुजर जाती है।"

अदालत ने इस पर घोषणा कर दी कि "वादी वकील ज्यादा तुनुकमिजाज है, इसलिए मामला खारिज!"

'हारे को हरि नाम' याद आता है। इसीसे पता चलता है कि हमारी ईश्वर निष्ठा-तथा धार्मिकता कितनी छिछली है।

ईश्वर की शरण जानेवाले भी यह नहीं चाहते कि हम ईश्वर की इच्छा का पालन करें। सब यही चाहते हैं कि ईश्वर हमारा फर्माबरदार बने। वकील साहब कैसे अपवाद होते? उन्होंने प्रार्थना की कि "हे भगवन्! तेरी कृपा मुझ पर है तो

इस धोबी के गधे को मार डाल। मैं सत्यनारायण की पूजा कराऊँगा।"

लेकिन भगवान् को वकील की अक्ल से चलना मंजूर नहीं था। हुआ यह कि एक ही सप्ताह बाद वकील साहब के ताँगे का एक घोड़ा मर गया।

वकील साहब भगवान् से भी चिढ़ गये। मूर्ति के सामने जाकर कहने लगे—"अनादिकाल से तुमने कैसे ठकुराई की होगी, जो आज तक घोड़े और गधे में तमीज करने का शऊर नहीं है। मैंने कहा कि गधे को मार डालो और तुमने मेरा घोड़ा ही मार डाला!" ●

१६. काम और आराम

एक विद्यार्थी था। गेम्स पीरियड शुरू हुआ और वह भागकर घर आ गया।

माँ ने पूछा—"भागकर क्यों आया?"

"पढ़ाई से थोड़े ही भागकर आया हूँ?"—लड़के ने सफाई दी—"खेल के घंटे से भाग आया।"

"अब क्या करेगा?"

"खेलूँगा।"

माँ नहीं समझ पायी कि वहाँ भी खेल था और यहाँ भी खेल है, तो इसे भागकर आने की क्या जरूरत है।

वह कहने लगी—"जब खेलना ही है तो वहीं खेल लेता।"

जो स्कूल के कार्यक्रम का एक हिस्सा है उसमें भाग लेने का अर्थ है पाबंदी।

वह पाबंदी लड़का बर्दाश्त करना नहीं चाहता। इसीलिए उसने बात बदलकर कहा—"मुझे स्कूल का खेल पसंद नहीं है। यहाँ मैं जासूसी उपन्यास पढ़ूंगा।"

"तो स्कूल में भी तो पढ़ाई थी ?"

"वह पढ़ाई मेरी मर्जी की नहीं थी।"

माँ समझदार थी। वह बच्चे का आशय समझ गयी कि अपनी मर्जी का काम भी आराम है और दूसरे की मर्जी का आराम भी काम है।

२०. मोटापा

एक अमीर था। उसका वजन बेतहाशा बढ़ गया। वह बड़ा परेशान था कि कैसे वजन घटे। ज्यादा वजन होने से उसे चलने में भारी दिक्कत होने लगी। वजन घटाने की दवा ली, मगर फायदा नहीं हुआ। वह अपने-आपको बीमार समझ बैठा।

एक दिन एक आदमी ने यह सब सुना तो उसके पास आया और बोला—"आप क्यों परेशान हैं ? आपको कुछ नहीं हुआ है। नाहक लोग दवा देकर आपको लूट रहे हैं।"

"तो क्या करूं ? कैसे घटाऊँ अपना वजन ?"—उसने पूछा।

"आप मेरे साथ रोज सौ कदम चलें तो यह वजन घट जायगा।"

अमीर ने खुशी-खुशी उसके साथ चलना मंजूर कर लिया और मान लिया कि वह नंगे पैरों चलेगा।

वह उसे गर्मीभर दोपहर में बारह बजे रेत में ले जाता था।

नंगे पैर होने से रेत में कदम पड़ते ही अमीर दौड़ने लगता था।

दस रोज में शरीर कुछ हल्का हो गया। उसने आखिर एक दिन दौड़कर आते हुए कह ही दिया—"आपने ऐसा उपचार कर दिया, जैसा आज तक किसीने नहीं किया था!"

"मैं उपचार कहता तो शायद आप न करते।"—वह आदमी कहने लगा—"परिस्थिति ही ऐसी पैदा कर दी कि आपको सौ कदम दौड़ना ही पड़ता था।"

परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में समाधान पाने से अमीर का मोटापा छट गया। ●

२१. शादी साहूकार की बेटी की

एक साहूकार की बेटी शादी के लायक हो गयी। उसके लिए अच्छे-से-अच्छा घर-वर ढूँढा गया। साहूकार ने सोचा, इकलौती बेटी है, तो इसका विवाह भी इतनी धूमधाम से किया जाय कि गाँववाले खुश हो जायँ।

तिथि निश्चित होते ही साहूकार ने मुनीमजी से कहा कि विवाह की तैयारियाँ करो।

मुनीमजी ने कहा—"अब आप निश्चिन्त हो जाइये। मैंने

जिम्मेवारी समझ ली है। कोई फिक्र की बात नहीं है। आपके नाम के लायक सारी व्यवस्था हो जायगी।"

मुनीमजी ने नायब मुनीमों को बुलाकर एक-एक के हवाले एक-एक काम कर दिया।

हर काम के लिए एक-एक समिति बनी—स्वागत-समिति, भोजन-समिति, बत्ती-समिति आदि।

बड़े मुनीमजी और साहूकार निश्चिंत होकर सुख की नींद सोने लगे।

बारात आने का वक्त आ पहुँचा। साहूकार अपनी छड़ी उठाकर शान से अगवानी करने चला। देखा तो चारों ओर प्रसन्नता का सागर लहरा रहा है। सारी तैयारी दुरुस्त, लेकिन बत्ती का अभाव है।

पूछा मुनीमजी से—"बत्ती कहाँ है ?"

"हुजूर, बत्ती-समितिवाले को जतला दिया था। उसे ठीक वक्त पर आ जाना चाहिए था। लेकिन वह गायब है। अभी पता लगवाता हूँ।"

बत्तीवालों का पता लगाने के लिए एक खोज-समिति कायम की।

खोज-समितिवाले ने बाजार में जाकर देखा तो बत्ती समितिवाला चाय पी रहा है और बत्तीवाला गैस में हवा भर रहा है।

इधर साहूकार हर मिनट में हड़बड़ा रहा था। उसे पल-पल की खबर चाहिए थी। इसलिए खोज-समिति को सबक सिखाने के इरादे से एक अनुशासन-समिति कायम की।

अनुशासन-समितिवाला पहुँचा तो देखता है कि बत्ती-

समितिवाला हाथ पोंछ रहा है, बत्तीवाला पंप कर रहा है और खोज-समितिवाला चाय पी रहा है।

वह जवाब तलब करने लगा। दोनों समितिवाले बोले—"जल्दी क्या है? अभी चलते हैं। तब तक थोड़ा नाश्ता कर लीजिये।"

ये हजरत नाश्ता करने बैठ गये।

बारात के पहुँचने का समय बिलकुल नजदीक आ गया। साहूकार आखिर कब तक धीरज रखता? वह बौखला उठा। उसने कहा—"मुनीमजी, आप लोगों में से किसीकी बेटी की शादी थोड़े ही है? शादी मेरी बेटी की है। मैं बेवकूफ हूँ, जो दूसरों के भरोसे रहा। अब लाओ, मशाल मेरे ही हाथ में दो।"

नागरिक अपना जीवन दूसरों के भरोसे और दूसरों की मार्फत जीना चाहते हैं, तभी तक बेबसी है। यह बेबसी तब समाप्त होती है, जब नागरिक स्वयं सक्रिय हो जाय।

और यह सक्रियता आते ही साहूकार का घर-आँगन थिरक उठा।

चारों तरफ रोशनी हो गयी। ●

२२. नीति न बेचनेवाला भिखारी

ट्रेन भागी जा रही थी। हम लोग बैठे कुछ बात कर रहे थे कि एक भिखारी का लड़का आकर कहने लगा—"बहुत भूख लगी है बाबू, कुछ दे दो।"

आसपासवाले यात्री बोले—"यह भूखा नहीं है, स्वांग कर रहा है।"

मैंने देखा—उसके कहने में दर्द है। उसे दस पैसे देने लगा।

लोगों ने मुझे समझाया—"आप इस हट्टे-कट्टे को पैसा मत दीजिये। ऐसे लोगों को देना अविवेक है।"

फिर भी मैं उसे दिये बिना नहीं रह सका।

उसने दस पैसे का खाद्य पदार्थ खरीदा।

बंद पैकेट उसने खोलकर देखा और नाक-भौं सिकोड़ते हुए ज्यों-का-त्यों फेंक दिया।

फेंकते ही टोका मैंने—"अरे, यह क्या कर दिया। तुम्हे तो बड़ी भूख लगी थी न ?"

भूखा होते हुए आराम के लिए नीति न बेचनेवाला वह भिखारी लड़का बोला—"इसमें मछली थी। मैं मछली नहीं खाता। भूखा हूँ तो क्या, मेरा अपना भी कोई नेक नियम है।" ●

२३. तुम कौन हो ?

महाराष्ट्र के एक स्कूल में कार्यक्रम था। मास्टर साहब ने पहली कतार में होशियार लड़के बैठा दिये थे, क्योंकि उन्हे अंदेशा था कि कहीं मैं कुछ सवाल न पूछ बैठूँ।

मैंने सरसरी निगाह बच्चों पर डाली और एक लड़के से पूछ ही लिया—"कौन हो तुम ?"

उसने जवाब दिया—"मैं ब्राह्मण हूँ।"

ठीक वही प्रश्न दूसरे से पूछा।

वह बोला—"मैं कोंकणस्थ ब्राह्मण हूँ।"

तीसरे से जब वही सवाल पूछा तो उसने सोचा, पहले के उत्तरों में जरूर कुछ कमी रह गयी है। उस कमी को पूरा करते हुए उसने उत्तर दिया—"मैं ऋग्वेदीय कोंकणस्थ ब्राह्मण हूँ।"

सबसे अन्त में एक लड़का बैठा था। उससे भी मैंने वही प्रश्न पूछा।

वह हड़बड़ाकर उठा और कहने लगा—"मैं लड़का हूँ।"

मैंने कहा—"यह है सही जवाब।"

मास्टर साहब के गले मेरी बात कैसे उतरती ? उनकी भाव-भंगिमा देखकर मैंने बच्चों को समझाना शुरू किया—

"गुरुद्वारे में जो बैठा है, वह सिख है।

मन्दिर में जो बैठा है वह हिन्दू है।

मस्जिद में जो बैठा है वह मुसलमान है।

कोई कांग्रेसी है, कोई कम्युनिस्ट है, कोई सोशलिस्ट है। सबके माथे पर चिप्पियाँ लगी हैं, जैसे चाय के डब्बे पर लगी हैं—'ब्रुक बांड' या 'लिप्टन' आदि।

इस बच्चे ने चिप्पी हटाकर बता दिया है कि 'बच्चा बच्चा है, मनुष्य मनुष्य है'।"

एक समझदार बच्चा उठ खड़ा हुआ और पूछने लगा—"कैसे हटेंगी ये चिप्पियाँ ?"

"इन्हें बच्चे हटा रहे हैं"—मैंने अपने संस्मरण सुनाते हुए कहा—"स्कूल में हमें एक अंग्रेजी कविता पढ़ायी जाती थी। लेखक था किपलिंग। कविता में कहा गया था—पूरब पूरब है, पश्चिम पश्चिम है। इन दोनों का मिलाप कभी नहीं हो सकता।"

बाद में जब मैं मास्टर हुआ तो लड़कों को वही कविता पढ़ाने लगा।

एक छोटा लड़का मुझसे पूछ बैठा—"गुरुजी, वह कविता किसने लिखी है ?"

"एक बड़े आदमी ने।"

"वह कैसे बड़ा आदमी हो गया ?"—उसने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"जो इतना भी नहीं समझता कि यह पृथ्वी गोल है ?"

मैंने उसके प्रश्नों की गहराई समझी और मान लिया कि पूरब और पश्चिम तो सिर्फ नाम हैं, संकेत हैं। सीमा नक्शे पर होती है, मनुष्य के मन में होती है, धरती पर नहीं।

बच्चों के गले मेरी बात उतरी और मास्टर साहब भी समझे बिना न रहे कि इस जमाने का मनुष्य मनुष्य है। वह ब्राह्मण भी नहीं है, भंगी भी नहीं; वह अमीर भी नहीं है, गरीब भी नहीं। ●

२४. नौकरशाही

एक बड़ा जमींदार था। वह सबेरे नहीं उठ सकता था। घंटियाँ बजतीं, लोग उसे उठाते, पर वह उठता नहीं था।

एक दिन उसने अपने नौकर से कहा—"मैं कल से सबेरे घूमने जाना चाहता हूँ। तू मुझे सबेरे उठा दिया कर। बिना उठाये तुझे तनख्वाह नहीं मिलेगी।"

दूसरे दिन नौकर ने बहुत पुकारा, पर वह जगा नहीं।

जब उठा, तब नौकर पर बिगड़ा और कहने लगा—"तूने मुझे जगाया ही नहीं !"

नौकर ने कहा—"हुजूर, मैंने आपके कान के पास आकर आवाज दी, पर आप उठे ही नहीं ।"

दूसरे दिन भी वही सब हुआ तो जमींदार ने कहा—"अब तेरी तनख्वाह बंद ।"

नौकर ने हाथ-पैर जोड़े और काम करता रहा ।

तीसरे दिन नौकर ने उसे खूब हिलाया, फिर भी वह नहीं उठा ।

चौथे दिन नौकर ने उस पर पानी उँडेल दिया ।

इस पर जमींदार उठा और नौकर को एक तमाचा मार-कर फिर सो गया ।

नौकर चिन्ता में पड़ गया कि अब क्या किया जाय !

पाँचवें दिन नौकर फिर आशा एवं विश्वास के साथ जमींदार के पास पहुँचा ।

हिलाने-डुलाने से जब न उठा तो उस पर पानी उँडेल दिया ।

बिछौना आदि गीला होते ही वह उठकर नौकर पर हाथ उठाता, इससे पहले नौकर ने ही उसे एक तमाचा जड़ दिया ।

लापरवाह मालिक नौकर से दबकर रहता है । भारत के नागरिक की भी यही हालत है । इसीलिए नौकरों का सरकारी तन्त्र उस पर हावी रहता है । इसीको नौकरशाही कहते हैं ।

नौकर और जमींदार में कुश्ती होने लगी ।

नौकर ने जमींदार को दे पटका।

धूलि-धूसरित जमींदार अपने कपड़े झाड़ते उठ खड़ा हुआ और उसने यह बात मंजूर की कि "हाँ, आज तूने मुझे जगाया है।"

२५. दो न्यायाधीश

एक दफा दो न्यायाधीश रात के समय बिना लाइट के साइकिल पर जा रहे थे। रास्ते में पुलिसवाले ने देखा और टोका—"साहब, नाम बताइये।" नाम सुनते ही पुलिसवाला पहचान गया कि कौन हैं ? फिर भी बिना झिझक बोला—"कल पेशी होगी।"

दोनों ने घर लौटते समय सलाह की कि कल तेरा मामला मेरे सामने चलेगा और मेरा मामला तेरे सामने, तब क्या करना है और कैसे बरी होना है ?

दूसरे दिन पेशी शुरू हुई।

पहला मजिस्ट्रेट अपराधी बनकर खड़ा हो गया।

जज बने मजिस्ट्रेट ने पूछा—"कल आप बिना बत्ती साइ-किल चला रहे थे ?"

"जी हाँ।"

"आपको नहीं मालूम कि यह गुनाह है ?"

और एक रुपया जुर्माना कर दिया।

अब दूसरे की बारी आयी।

पहले ने जज की कुर्सी पर बैठकर वे ही सवाल किये।

गुनाह कबूल किया गया।

जुर्माना हुआ—दस रुपया।

"क्यों भाई, मैंने तो तुम्हारे पर एक रुपया जुर्माना किया और तुम मुझ पर दस रुपया कर रहे हो! आखिर क्यों?" —अपराधी ने पूछा।

"तुम्हें नहीं मालूम?"—जज ने कहा—"एक ही दिन में यह दूसरा गुनाह है और करनेवाला मजिस्ट्रेट है। इसलिए यह 'डिटरेंट पनिशमेंट' है।"

चालान करनेवाला पुलिस दोनों के मुँह देखता रह गया। ●

२६. गैरकानूनी वाल्टेयर

वाल्टेयर बड़ा मजाकिया था। शरारतभरी हँसी के साथ वह जितनी पते की बात कह देता था, उससे लोग पानी-पानी हो जाते थे।

एक दफा वाल्टेयर पेरिस में प्रवेश कर रहा था। चुंगी के नाके पर जो आदमी था, उसने वाल्टेयर की घोड़ागाड़ी में झाँका और पूछा कि "इसमें कोई चीज फॉट्र बँड (अवैध) तो नहीं है?"

"है……"

"वह क्या?"

"स्वयं वाल्टेयर।"

उम्मीदवारों की भीड़ में अवैध अगर कोई है तो वह वोटर —नागरिक है। ठीक यही भूमिका शरारती वाल्टेयर ने अपनी मानी। इसलिए कहा—"देअर इज नथिंग फॉट्र बँड एक्सेप्ट मायसेल्फ"—इस गाड़ी में गैरकानूनी सिर्फ मैं अकेला हूँ।

उत्तर सुनते ही चुंगीवाले ने हाथ जोड़ दिये और उसकी गाड़ी को जाने का सिगनल मिल गया। ●

२७. संविधान-संशोधन

जानवरों का एक फार्म था। उसमें तरह-तरह के जानवर रहते थे। एक दफा उन जानवरों के मन में आया कि हम एक-दूसरे के साथ ठीक तरह से रह सकें, इसलिए संविधान तैयार किया जाय।

उन्होंने संविधान-परिषद् कायम की।

पहली भूमिका बनी—"इस फार्म पर रहनेवाले हम सब जानवर अपने लिए यह संविधान बनाने जा रहे हैं।"

इसकी पहली धारा रखी गयी—"कोई भी जानवर दूसरे जानवर को मारेगा नहीं।"

सभा में उपस्थित बिल्ली खड़ी हो गयी। कहने लगी—"मैं चूहों को मारूंगी नहीं तो फिर खाऊँगी क्या ? क्या कल से उपवास करना शुरू कर दूँ ?"

शेर बोला—"आप लोगों की मंशा क्या है ? क्या मैं बकरा खाना बंद कर दूँ ?"

इस तरह एक-एक करके कई जानवर खड़े हुए तो पहला

संशोधन आया—"कोई भी जानवर दूसरे जानवर को बिना कारण नहीं मारेगा।"

इस तरह पहला आर्टिकल समाप्त हो गया, क्योंकि कारण सभी के पास था। कोई खाने के लिए मारता है तो कोई झगड़े के लिए।

अब दूसरी धारा आयी—"सब प्राणी समान हैं।"

"यह कैसा संविधान है ? क्या तुम्हारे बाप-दादों ने बनाया था कभी संविधान ?"—घोड़ा तुनककर बोला—"क्या खच्चर और मैं—दोनों बराबर हैं ?"

इस पर दूसरा संशोधन आया—"सारे प्राणी समान हैं, लेकिन कुछ दूसरों से अधिक समान हैं।"

संविधान नागरिक का बनाया होता है। जो अधिकार संविधान में दिये गये होते हैं, उतने ही अधिकार नागरिक के नहीं होते, वरन् उसके अलावा भी होते हैं। संविधान में दिये गये अधिकार औपचारिक होते हैं और नागरिकता के कारण प्राप्त अनौपचारिक अधिकार स्वयंसिद्ध होते हैं।

अनौपचारिक अधिकारों की तरह दूसरी धारा बनने से पहले ही समाप्त हो गयी और जानवरों की संविधान-परिषद् के सदस्य एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गये। ●

२८. ब्रिटिश रूल

१९१० का समय। मैं छोटा था। अपने चाचा के साथ सरकस देखने गया। एक दृश्य था—शेर और बकरी एक ही बर्तन में पानी पी रहे हैं और उनके बीच एक तख्ती टँगी है, जिस पर लिखा था—'ब्रिटिश रूल।'

मैंने चाचा से पूछा—"यह ब्रिटिश रूल क्यों लिखा गया है ?"

"शायद राम-राज्य में भी ऐसा नहीं होता था।"—चाचा ने मुझे समझाया—"यह अनहोनी बात अंग्रेजी राज में हो रही है।"

राजा का राजापन और रंक की कंगालियत समाप्त होगी तब उनका रुतबा समान होगा और वे एक धरातल पर आयेंगे। ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व और भंगी का भंगीपन; हिन्दू का हिन्दुत्व और मुस्लिम की इस्लामियत का निराकरण हुए बिना खालिस इन्सान इन्सान से नहीं मिल सकता। यह बात ध्यान में आते ही मैंने चाचा की बात का प्रतिवाद करते हुए कहा—"तख्ती पर लिखा हुआ झूठ है। सर्कस में अंग्रेजी राज नहीं, रिंग मास्टर का राज है। राम-राज या अंग्रेजी राज तब होता, तब शेर की क्रूरता और बकरी की कायरता काफूर हो जाती।"

नहीं कहा जा सकता कि चाचा को कैसा लगा ? लेकिन इसके बाद फिर कभी उनके मुँह से 'ब्रिटिश रूल' की तरफदारी करनेवाली चर्चा नहीं सुनी। ●

२६. कानूनी शराब

एक आदमी पर एक केस चला। फैसला होते ही वह रोते-रोते आया। देखनेवालों का दिल पसीज गया। पूछा—"क्यों भाई, रो क्यों रहे हो?"

"जुर्माना हो गया!"

"किस कारण से?"

"शराब पी थी।"

"तब तो ठीक ही हुआ। तुमने पी थी न?"

"जी हाँ।"

"तब फिर शिकायत क्यों? क्या दंड हुआ इसके लिए?"

"नहीं, मुझे दंड हुआ इसकी शिकायत नहीं है"—उसने अपने-आपको संयत करते हुए कहा—"लेकिन जिसने मुझे सजा दी, उस न्यायाधीश को दंड क्यों नहीं हुआ, इस बात की मुझे शिकायत है।"

"उसको क्यों सजा मिलनी चाहिए?"

"क्योंकि उसने भी शराब पी थी।"

"तुमने देखा था?"

"हाँ, अपनी आँखों से देखा था।"

"तो, उसके पास लायसेंस होगा।"

"लायसेंस हो तो क्या हुआ?"

"वह कानूनी शराब पीता है और तुम गैरकानूनी पी रहे थे।"

"गैरकानूनी क्या और कानूनी क्या—शराब तो शराब है।"—उसने जोर देकर पूछा—"क्या मूल वास्तविकता में भी कुछ फर्क पड़ता है ? नशा तो दोनों में समान ही आता है।"

जुर्म को कानूनी जामा पहना दो तो कानून उसको सजा नहीं देगा, क्योंकि कानून भ्रष्ट है, सजा अन्धी है।

कानूनी शराब की बात ध्यान में आते ही रोनेवाले के आँसू थम गये। ●

३०. जैसा किया, वैसा भोगा

एक दफा मुझे कार्यक्रम के लिए दूसरे गाँव जाना था। साथी कार्यकर्ता किसीसे एक मोटर माँगकर लाया। मोटर पुरानी थी। मुकाम पर पहुँचने से पहले ही बिगड़ गयी।

गाँव के बाहर एक लोहार की दूकान थी। वहाँ तक मोटर को धकेलकर ले गये। लोहार ने टूट-फूट बना दी और फिर मजदूरी का एक रुपया माँगा।

उसकी मेहनत देखकर हमने दो रुपये दे दिये।

काँपते हाथों से रुपये लेते समय वह रो पड़ा।

मैं पूछे बिना कैसे रहता—"क्यों रो रहे हो ?"

"सबेरे से बोहनी नहीं हुई थी।"

"क्यों ? दिनभर कुछ काम नहीं मिला ?"

"काम तो मिला।"

"फिर………?"

"पहले साहूकार आया। उसने पैसा नहीं दिया। फिर आया जमींदार। वह भी मुफ्त में काम कराकर ले गया। तीसरा काम सिपाही का किया, जो जाते समय दाम देने की जगह गालियाँ भी दे गया।"

"सिपाही का कौनसा काम किया ?"

"उसकी बंदूक की संगीन में सान लगाया।"

"तो उसने पैसे क्यों नहीं दिये ? तुमने माँगे नहीं होंगे ?"

"मैंने माँगे, हुज्जत की, गिड़गिड़ाया भी।"

"तो, उसने क्या किया ?"

"वह मुझे ही धमकाने लगा। कहने लगा कि ज्यादा बोला तो गर्दन उड़ा दूँगा।"

तख्त, तलवार और तिजोरी की प्रतिष्ठा तभी तक है, जब तक औजार बनानेवाला अप्रतिष्ठित है। जिस दिन औजार बनानेवाले की प्रतिष्ठा होगी, उस दिन वह शान से कहेगा कि हमारी गर्दन काटनेवाले हथियार हम नहीं बनायेंगे।

हथियार बनाने को स्वयं का एहसास कराने के लिए मैंने पूछा—"संगीन किसने बनायी ?"

"मैंने ही बनायी थी।"

एक रुपये की जगह दो रुपये देनेवाले मेरे साथी कार्यकर्ता के मुँह से आखिर निकल ही गया— "तो अब रोओ।"

जैसा किया, वैसा भोगो।

३१. बादशाह के गुलाम

अकबर के दरबार में खुशामदियों की कमी न थी। वे ठकुर-सुहाती कहते और वाहवाही लूटते थे।

एक दिन भोजन में कुछ भरवा बैंगन की अच्छी-सी तरकारी बनी। मसाला भी ठीक-ठीक पड़ा। बादशाह ने छककर खाया। दरबार में पहुँचने पर भी स्वाद और जायका को भुलाया नहीं जा सका। इसलिए सिंहासन पर बैठते ही बोले—"बस, तरकारियों का बादशाह यदि कोई है तो बैंगन। दुनिया में ऐसी दूसरी तरकारी नहीं है।"

दरबारियों ने कहा—"हुजूर दुरुस्त फरमाते हैं। परवरदिगार, इसीलिए तो बैंगन के सिर पर मुकुट बना दिया है हरा-हरा भगवान् ने।"

दूसरे दिन बादशाह के पेट में दर्द होने लगा। ज्यादा खाने का असर हुए बिना न रहा। पहले दिन जो चटकारे लगाते हुए दरबार में पहुँचा था, दूसरे दिन मुँह लटकाये आया। बैठते ही जबान हिली—"कंबख्त, बैंगन जैसी खराब तरकारी दुनिया में दूसरी कोई नहीं है।"

दरबारियों ने नहले पर दहला भिड़ाया—"परवरदिगार, बिलकुल दुरुस्त फरमाते हैं। इसीलिए भगवान् ने उस पर काँटे लगा दिये हैं और नाम भी तो उसका बेगुन है।"

अकबर ने कहा—"कल तो तुम लोग बैंगन की तारीफ के पुल बाँध रहे थे और आज उसे कोसने लगे!"

"हुजूर, हम कोई बैंगन के गुलाम थोड़े ही हैं?"—दरबारियों ने सफाई दी—"हम तो आपके गुलाम हैं।" ●

३२. ताजमहल

एक बार आगरा जाना हुआ। कार की यात्रा थी। ड्राइवर बहुत पुराना और सेवाभावी था। मन में आया—चलो, इसे आज ताजमहल ही दिखा दिया जाय।

सुबह ही सुबह हम वहाँ पहुँच गये।

इधर-उधर से देखने के बाद उसने पूछा—"वाह, क्या खूबसूरत है; लेकिन अभी तक मेरी समझ में नहीं आया कि इसमें रहता कौन है?"

"कोई नहीं।"

"तो क्या यह कॉलेज है?"

"नहीं।"

"होटल है?"

"नहीं।"

"हॉस्पिटल है?"

"नहीं।"

उसके अजीब प्रश्नों ने मुझे भी चौंका दिया।

सारी सुन्दरता की मूर्ति बने ताजमहल के विषय में मैंने

उसे बताया—"यह शाहजहाँ नाम के बादशाह की बेगम का मकबरा है।"

"अरे! तो मुझे इस सबेरे की शुभ वेला में यहाँ क्यों ले आये?" —उसने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा—"भले ही यह दुनिया की सबसे सुन्दर इमारत है, लेकिन है तो मरघट ही न?"

उसके उत्तर में जैसे सारा माहौल बोल पड़ा। आज की साधनसम्पन्न दुनिया ताजमहल जैसी सुन्दर बन सकती है, लेकिन डर है कि मानवता का मरघट न बन जाय।

और डरा-डरा-सा ड्राइवर ताजमहल से बाहर निकल आया। ●

३३. बृहल्लांगुलाचार्य का मत

सर्कस में काम करने के बाद लौट आये शेर को जंगल के शेरों ने कहा—"आप मनुष्यों में रहकर आये हैं। हम सब जानना चाहते हैं कि मनुष्य किस प्रकार का प्राणी है। इसलिए आप हमारी सभा को संबोधित कर बताइये कि उसकी क्या स्थिति है और वह क्या खाता है?"

शेर की स्वीकृति मिलते ही जंगलभर में डुग्गी पिटवा दी गयी कि "बृहल्लांगुलाचार्य कल आम सभा में मनुष्य नाम के प्राणी के विषय में जानकारी देंगे।"

बृहल्लांगुलाचार्य का अर्थ है—बड़ी पूँछवाला। लेकिन इतना बड़ा नाम न बताया जाय तो सभा में आयेगा कौन? हम अपने नाम के पीछे बी० ए०, एम० ए० आदि पूँछ लगाते

हैं, वैसे ही शेर के लिए घोषित किया गया—"बृहल्लांगुलाचार्य, मैन लैंड रिटर्न्ड।" (बड़ी पूँछवाला मनुष्यों की दुनिया से लौटा हुआ)

जंगल की विराट् सभा में मनुष्य का लक्षण बताते हुए उस शेर ने कहा—"मनुष्य किसी काम के लायक प्राणी नहीं है। मैं उनके बीच रहा, तब मैंने छोटे-बड़े, सब प्रकार के मनुष्यों को एक-दूसरे की शिकायत करते देखा। हरएक अपने-आपको बचाता और दूसरे के लिए कहता था कि वह आदमी पैसा खाता है। इसलिए मैंने विचार किया कि पैसा जरूर कोई खाने लायक स्वादिष्ट वस्तु होनी चाहिए। एक दिन जब मेरा मालिक बाहर गया तो उसकी जेब में पंजा डालकर मैंने पैसे निकाल लिये। सुन्दर पीले, सफेद, चमकीले। मैंने सोचा—मनुष्य ने खाने की कितनी सुन्दर चीज ढूँढ़ निकाली है। और फिर झट से एक अपने मुँह में रख लिया। लेकिन········"

शेर ने क्षणभर रुककर कहा—"मेरे दाँत भी उसे चबाने से टूट जायेंगे, ऐसा लगा।

"मैंने सुना था कि लोग कुछ चीजें चूसते हैं इसलिए हो सकता है, यह चूसने की चीज हो। चूसते-चूसते मेरी जीभ में छाले पड़ गये। पैसा न खारा था, न खट्टा, न तीखा, न मीठा।

"फिर मुझे किसीकी बात याद आयी, जब कहा गया था कि वह बहुत-सा पैसा हजम कर गया। तो, मैंने पैसा निगल लिया।"

बीच ही में किसीने टोका—"तो······"

"·····तो विश्वास कीजिये अभी तक मेरे पेट में इस कदर दर्द उठता है कि पूछो मत।"

सभा हैरानी के साथ सुनती रही।

शेर ने अपनी अंतिम प्रतिक्रिया व्यक्त की—"मुझे लगता है कि यह मनुष्य महामूर्ख प्राणी है ! जिस पैसे का खाने, पीने, निगलने आदि में उपयोग नहीं कर सकते, उसके लिए वह मर मिटता है !"

३४. यथाशक्ति आचार

किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा धर्मात्मा माना जाता था। पुरोहित के काम से उसे आसपास के गाँवों में जाना पड़ता तो पीछे ब्राह्मणी भोजन नहीं पकाती थी। वह पूरा दिन पूजा-पाठ में बिता देती थी। सारे गाँव में उसके सतीत्व की धाक थी।

गाँव की बड़ी-बूढ़ी स्त्री मिलने आती तो वह पंडिताइन से कह भी देती थी—"भगवान् करे, लेकिन किस्मत के कोप से यदि पंडितजी न रहे तो आपका क्या होगा ? आप तो उनके बिना पलभर भी नहीं रह सकतीं।"

पंडिताइन कहती—"मैं तो सती हो जाऊँगी, सहगमन करूंगी।"

संयोगवश एक दिन सचमुच पंडितजी परलोकवासी हो गये। गाँव में हल्ला मच गया कि आज सती सहगमन करेगी।

पंडितजी के घर लोगों की भीड़ लग गयी। तिल रखने की जगह नहीं।

पंडितजी की सजी-सजायी अरथी गाड़ी में रखी गयी। शव के पास हल्दी और कुंकुम से सुसज्जित सोलह शृंगार किये हुए

पंडिताइन बैठी। शोभा-यात्रा श्मशान की तरफ चल पड़ी। पुर-नारियों ने अटारियों पर से फूल बरसाये।

चंदन और कपूर की चिता रचायी गयी। उस पर शव रखा गया। सती से कहा गया—"अब आप भी चिता पर आरूढ़ हों।"

"चिता परचाइये" सती ने कहा।

चिता सुलगायी गयी।

लपटें हवा में ऊँची उठने लगीं।

बार-बार तकाजा करने पर भी जब सती अपनी जगह से टस-से-मस न हुई तो मुख्य पुरोहित ने झल्लाकर पूछा—"आखिर आपका इरादा क्या है? थोड़ी देर में चिता ठंडी हो जायगी। आप सहगमन करेंगी या नहीं?"

सती शांत भाव से बोली—"मेरा सहगमन संपन्न हो चुका है।"

पुरोहितजी के अचरज का ठिकाना नहीं। बोले—"मतलब? आप तो मेरे सामने बैठी हैं सदेह......सशरीर......।"

"शरीर से सहगमन करने की हिम्मत मुझमें नही है।"—सती ने गंभीरता के साथ जवाब दिया—"मैंने अपनी वेणी का एक बाल चिता में चढ़ा दिया और यह मेरा यथाशक्ति सहगमन है।"

भीड़ में सभी यथाशक्ति संकल्पों का पालन करनेवाले ही इकट्ठे थे। अतः पंडिताइन को क्या कहते?

सब अपना-सा मुँह लटकाये घर लौट आये। ●

३५. जैसी अक्ल, वैसी सृष्टि

हमारे एक बहुत बड़े मित्र हैं। पहले असेम्बली में थे। अब जन-सेवा में जुटे हैं। खूब पढ़ते हैं और दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, इसकी खबर भी रखते हैं।

एक बार बहुत दिनों बाद मुलाकात हुई तो मिलते ही बोले—"आजकल किस दुनिया में रहते हो ?"

"उसी दुनिया में, जिसमें आप रहते हैं।" मैंने जवाब दिया।

"मालूम है, हम कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये हैं ?"—उन्होंने अपने मन की बात स्पष्ट की—"जानते हो कि अब हम मनुष्य को भी विज्ञान से बनायेंगे। पहले आँख की जगह आँख, नाक की जगह नाक, हृदय की जगह हृदय और ब्रेन की जगह ब्रेन तो होता ही था, पर अब हम पूरा मनुष्य बना रहे हैं।"

मैंने कहा—"अगर मुझे दुबारा बनाना हो तो कृपा करके आप न बनाइयेगा।"

"क्यों ?"

"जिस भगवान् ने हमें बनाया, हमें तो उससे भी शिकायत है।"

"वह कैसी ?"

"उसने हमें शरीर दिया, पर भीमकाय शरीर क्यों नहीं दिया ? मदन जैसा रूप क्यों नहीं दिया ? गंधर्व की आवाज

क्यों नहीं दी ? सर्वशक्तिमान् होकर भी अगर उसने हमें इतना भद्दा बनाया तो तुमसे क्या आशा रखी जाय ? जितनी तुम्हारी अक्ल होगी, वैसा ही तो बनाओगे। जैसी अक्ल, वैसी सृष्टि।"

मित्र चिन्ता में पड़ गया कि वह मुझे क्या जवाब दे। ●

३६. मैं कह रहा था न ?

एक वृद्ध आदमी था। घर से आधा मील की दूरी पर उसने पेट्रोल की दूकान खोली।

कुछ समय बाद दूकान पर उसका लड़का बैठने लगा। वह दिनभर बीड़ी फूँकता रहता था।

वृद्ध का मित्र आया तो उसे सहन नहीं हुआ कि लड़का ऐसे बीड़ी पिये। उसने समझाकर कहा—"देखो, पेट्रोल की दूकान पर बीड़ी पीने से किसी दिन आग लग जायगी।"

लड़का क्यों सुनने लगा ? वह मनमानी करता रहा।

और एक दिन सचमुच दूकान में आग लग गयी।

दूर से देखते ही मित्र भागा-भागा आधा मील गया। चिल्लाते-चिल्लाते वृद्ध के पास पहुँचकर बोला—"देखो ! मैं कहता था वही हुआ न ? लेकिन कोई मानता नहीं था।"

"लेकिन हुआ क्या, पहले यह तो बताओ।" वृद्ध ने पूछा।

जैसे देश में सब अपनी-अपनी बात सही ठहराने के लिए जोर-जोर से चिल्ला रहे हैं और देश की सुलगती हुई समस्याओं को हल करने के बदले केवल यह शोर मचा रहे हैं कि मैं कह

रहा था, वही सही निकला न ? मैंने कहा था, वैसा ही हुआ न ? वैसे ही इस मित्र ने कहा—"बस वही, जो मैं कहता था, हो ही गया।"

"लेकिन क्या ?" वृद्ध ने धीरज खोये बिना पूछा।

"तुम्हारे पेट्रोल की दूकान में आग लग गयी।" आखिर में बताया उसने।

"अरे भले आदमी, तो आग बुझाने के बदले तुम यहाँ क्यों दौड़े आये ?"

"मेरी बात सही निकली—यह कहने के लिए ही तो।"

वृद्ध ने मित्र की बात सुनी और माथा पीट लिया। •

३७. औसत की अपूर्णता

भूदान का जमाना था। पितृपक्ष के दिन। मैं गया से पटना जाने के लिए रेल में बैठा। मेरे साथ वहाँ की म्युनिसिपल कमेटी के सेक्रेटरी थे। बातें होने लगीं। वे बोले—"इस साल पितृपक्ष में बहुत प्रगति हुई। पिछले साल कॉलरा से इन्हीं दिनों साढ़े सात प्रतिशत आदमी मर गये थे, लेकिन इस बार ढाई प्रतिशत से आँकड़ा ऊपर नहीं गया।"

मैं उनकी तारीफ करने लगा कि बहुत अच्छा है। आप लोगों ने यात्रियों के स्वास्थ्य पर ध्यान केन्द्रित कर बड़ी सेवा की।

बगल में एक स्त्री बैठी थी। वह रोने लगी। उसके साथ

उसका भाई भी था। मैंने उस भाई से पूछा—"यह क्यों रो रही है ?"

उत्तर देते समय उसकी झल्लाहट मुखर हो गयी। वह कहने लगी—"ये सेक्रेटरी क्या बक रहे हैं ? इनकी म्युनिसिपैलिटी में ढाई प्रतिशत आदमी मरे होंगे, लेकिन मेरी बहन का पति तो सौ प्रतिशत मर गया।"

मैंने सहानुभूति व्यक्त की और समझाया कि आज के संयोजन में संख्या-शास्त्र ने मनुष्य को सिर्फ अंक बना दिया है, लेकिन वह अंक नहीं है और न मानवता का अंश ही है। वह अपने-आपमें पूर्ण है, समूचा है।

पूर्णता की प्रतीति से भाई, बहन, सेक्रेटरी और आसपास-वालों के चेहरों पर समाधान की रेखाएँ उभर आयीं, जिसका एहसास यात्रा के अंत तक होता रहा और लोग कहते रहे कि अंकों का मनुष्य वास्तव में कितना अपूर्ण है। ●

३८. सारस की एक टाँग

एक खानसामा था। वह बड़ा हाजिर-जवाब था। उसका मालिक उससे बहुत खुश रहता था।

एक दिन मालिक बाजार से एक सारस पक्षी ले आया और बोला—"आज इसे पकाना।"

खानसामा की एक प्रेयसी थी। वह उसी दिन आ पहुँची।

खाना पकता रहा। बातें होती रहीं।

प्रेमिका ने पूछा—"क्या तू मुझसे प्यार करता है ?"

"हाँ, करता हूँ।"

"सबूत ?"

"जो चाहे दे सकता हूँ।"

"तो इस सारस की एक टाँग मुझे दे।"

कहते हैं कि सारस की टाँग बड़ी स्वादिष्ट होती है।

अब खानसामा की नानी मर गयी कि वह क्या करे ?

वह साधारण खानसामा था, कोई मिनिस्टर नहीं, जो बदल जाता। उसने एक क्षण के लिए मालिक को दिमाग से निकाल दिया और अपनी बात साबित करने के लिए सारस की एक टाँग काटकर प्रेयसी को दे दी।

मालिक भोजन करने बैठा।

सारस की एक ही टाँग देखकर उसने खानसामा से पूछा—"इसकी दूसरी टाँग कहाँ है ?"

"हुजूर"—खानसामा तपाक से बोला—"इसकी एक ही टाँग होती है।"

मालिक चुप रह गया।

दूसरे दिन वह खानसामा को तालाब पर घूमते समय साथ ले गया।

वहाँ बहुत से सारस पक्षी थे। उनकी आदत होती है कि वे तपस्वियों की तरह एक टाँग पर खड़े रहते हैं। तो, वे सारे एक ही टाँग पर खड़े थे।

खानसामा ने अवसर का लाभ उठाया—"देखिये हुजूर, इनके एक ही टाँग है। मैं कह रहा था न ?"

मालिक ने ताली बजा दी। वैसी ही ताली, जैसी आज बेजान आयोजन, शिक्षण और लोकतंत्र के सामने बजायी जा रही है।

ताली बजते ही सारे-के-सारे सारस उड़ गये। उड़ते समय उनकी दूसरी टाँग दिखाई दी। मालिक ने कहा—"देखो, दो टाँगें हैं।"

खानसामा ने मालिक का इशारा समझा और अपनी स्थिति पहचानकर कहा—"हुजूर, इसमें एक ही गलती है। आपने भोजन की टेबुल पर ताली बजायी होती तो वह सारस भी दूसरी टाँग दिखाये बिना न रहता।" ●

३६. घोड़े का राज

एक घुड़सवार था। सवारी में निष्णात। एक दिन घूमने निकला कि घोड़ा भड़क गया और वह नीचे गिर पड़ा।

घोड़ा बड़ा स्वामिभक्त था, सिखाया हुआ। वह तत्काल रुका। उसने सवार को फिर पीठ पर बैठाया और उसे दवाखाने ले गया।

अखबारवालों को ऐसी ही खबरें चाहिए। उन्होंने बड़े-बड़े अक्षरों में छापा कि घोड़ा अपने सवार को दवाखाने पहुँचा आया। कैसा घोड़ा है! मानो सरकस है।

घोड़े को देखने और घुड़सवार को बधाई देनेवालों की भीड़ उमड़ पड़ी। मित्र कहने लगे—"वाकई तुम्हारे घोड़े का जवाब नहीं, जो तुम्हें दवाखाने ले गया।"

घुड़सवार मुस्कराया, मगर बोला कुछ नहीं।

इसे एक समझदार ने लक्ष्य किया। उसने अगल-बगलवालों के हटते ही पूछा—"राज क्या है ?"

"राज वही है, जो हमारे आयोजन के साथ हो रहा है।" घुड़सवार ने ठंडी साँस लेते हुए कहा—"हम जहाँ पहुँचना चाहते हैं, उसके बदले जैसे वह हमें और ही कहीं ले जा रहा है, वैसे ही घोड़े ने किया।"

"मतलब ?"

घुड़सवार ने समझाया—"मेरा घोड़ा बहुत होशियार है, कलावान् है, लेकिन जानते हो क्या हुआ ? वह गधा मुझे जानवरों के अस्पताल ले गया।"

उड़ती खबर और भीड़ में राज कहने-सुननेवालों का ध्यान तभी भंग हुआ, जब दूर खड़ा घोड़ा हिनहिना उठा। •

४०. बिछौने पर मौत

सागर के किनारे रेत में दो सहेलियाँ खेल रही थीं। उनमें से एक मछुए की लड़की थी और दूसरी थी साहूकार की लड़की। खेलते-खेलते मछुए की लड़की बोली—"मैं जा रही हूँ। मुझे पिताजी के साथ नाव में बैठकर मछली पकड़नी है।"

"पहाड़ जैसी ऊँची-ऊँची लहरें उछल रही हैं और तू इनके बीच मछली पकड़ने जायगी ?"—साहूकार की लड़की ने चौंकते हुए कहा—"तुझे डर नहीं लगता ? कहीं बह गयी तो ?"

मछुए की कन्या कहने लगी—"डर काहे का ? बह जाऊँगी तो बह जाऊँगी। और रोज थोड़े कोई बह जाता है ?"

"तेरे दादा कहाँ मरे थे ?"

"दरिया में।"

"तेरे चाचा कहाँ मरे थे ?"

"सागर में।"

"और फिर भी तुझे डर नहीं लग रहा है ?"

"नहीं।"

सहेलियों की बातें आत्मीयता के साथ-साथ अन्तरंग को व्यंजित करने लगीं।

दुनिया में ज्यादा लोग बिछौनों पर मरे हैं।

बहुत कम लोग साहस में मरे हैं।

सीधे हिसाब की बात है कि जहाँ रहकर ज्यादा लोग मरे, वह जगह ज्यादा-से-ज्यादा भयानक है, पर उस तरफ ध्यान किसका है ?

मछुए की लड़की ने प्रतिप्रश्न शुरू किये। अब तू बता—"तेरे दादा-दादी कहाँ मरे थे ?"

"घर के बिछौने पर।"

"तेरे काका-काकी और मामा-मामी ?"

"घर ही में चारपाई पर।"

"तो भी तुझे रोज रात में बिछौने पर सोने से डर नहीं लगता ?"

साहूकार की लड़की क्या उत्तर देती ?

सहेली की सूझ-बूझ को दाद देती वह घर लौट आयी। ●

४१. दृष्टि-भेद

एक था बूढ़ा । वह हमेशा दूसरों की शिकायत किया करता था । ज्यादा शिकायत कौन करता है ? जो कमजोर हो, जिसका अपने पर वश न हो । वासनाएँ खूब हों और शरीर में दम न हो, तो झुँझलाने की आदत पड़ जाती है । इस आदत से लाचार लोग दूसरों का गुण नहीं देख पाते ।

बूढ़े का एक नाती था । छोटा लड़का । बड़ा समझदार । एक दिन वह नाना के साथ घूमने निकला । दोनों बगीचे में पहुँच गये ।

संसार से ऊबा, जीवन से थका और व्यवहार से खीजा हुआ बूढ़ा इमली की ओर इशारा करके बोला—"सब लोग भगवान् की तारीफ करते हैं । लेकिन उसने कैसा संसार बनाया है । इमली का पेड़ इतना बड़ा और पत्ते ? छोटे-छोटे । फल भी कितने छोटे हैं । वाह ! क्या सेंस ऑफ प्रपोर्शन है । शायद वह प्रमाणबद्धता, सिमेट्री आदि कुछ नहीं समझता । अरे ! खुद की अक्ल न थी तो क्या किसी सयाने से भी नहीं पूछ सकता था ?"

जो भी सामने आया, उसकी कुछ-न-कुछ टीका-टिप्पणी हो गयी । सिलसिला चलता रहा । सामने गुलाब की क्यारी आयी । सुन्दर-सुन्दर फूल खिले थे । देखते ही बूढ़ा बोला—"यह तो हद हो गयी ! उस मनहूस ने गुलाब जैसे कोमल फूल में काँटे लगा दिये ! कितनी अरसिकता है, जो इधर कोमल बेल पर मोटा-

सा कुम्हड़ा लटका है और उधर भारी-भरकम पेड़ पर नन्हा-सा फल।"

छोटे बच्चे को हर चीज में नवीनता दिखाई देती थी। हर वस्तु देखकर वह बाग-बाग हो रहा था। टीका-टिप्पणी के लिए उसके मन में गुंजाइश न थी। वह सहज भाव से बोला – "नानाजी, बाग का एक चक्कर और लगा लें।"

बूढ़ा नाती का मन कैसे तोड़ता ?

दूसरा चक्कर शुरू हो गया।

संयोग ऐसा हुआ कि इमली के पेड़ पर से एक फल बूढ़े की चाँद पर आ गिरा।

नाती ने कहा—"नानाजी, यह इमली कुम्हड़े के बराबर होती तो आपके सिर का क्या होता ?"

बूढ़ा सोच में पड़ गया।

लड़के ने अपनी बात चालू रखी—"नानाजी, आपकी आँखें कमजोर हो गयी हैं और आपको गुलाब काँटों से घिरा दीखता है, लेकिन मुझे लगता है कि काँटों में गुलाब खिल रहा है।"

बूढ़े को दिव्य दृष्टि मिली। उसे अनुभव हुआ कि बालक के कहने में तथ्य है। साबित आँख और साबित मन के बिना कैसे जाना जा सकता है कि इमली का फल छोटा बनाने में भगवान् का क्या उद्देश्य है। ●

४२. राजाजी की रसिकता

राजाजी बड़े रसिक थे। रुक्मिणी अरुंडेल के यहाँ एक दफा सांस्कृतिक कार्यक्रम था। राजाजी भी निमंत्रित थे। कलाकारों के सफल प्रदर्शन पर दर्शक तालियाँ गड़गड़ाते रहे पर राजाजी ने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

रुक्मिणीदेवी से जब नहीं रहा गया तो पूछा--"कैसा लगा आपको यह नृत्य ?"

"अच्छा लगा"--राजाजी ने सहज मूड में कहा—"लेकिन नृत्यांगना बाथरूम कास्ट्यूम (स्नानागार में पहनने के कपड़े) में क्यों नाची ? उसने पूरे कपड़े क्यों नहीं पहने ?"

"हमारे शिव-पार्वती भी तो ऐसे ही नाचते थे।"--किसीने तपाक से कहा।

प्रत्यक्ष कलाभिरुचि में मनुष्य का सक्रिय हिस्सा न होने से वह सेकंडहैंड रिक्रियेशन हो जाता है, जैसे धार्मिक विधि ब्राह्मण-पुरोहित द्वारा होती है—यह तथ्य जाननेवाले राजाजी भी कुछ कम न थे। कहने लगे—"शिव-पार्वती स्वयं नाचते थे। दूसरों को नाचते देखने कहाँ जाते थे ?"

अन्तर्मुख बनानेवाली राजाजी की रसोक्ति सुनकर आस-पासवाले दंग रह गये। ●

४३. सिनेमा का उपयोग

एक दफा मैं पोते-पोतियों के साथ सिनेमा देखने चला गया।

कुर्सी पर बैठते ही परदे पर एक वाक्य दिखाई दिया—"स्वच्छता पवित्रता है।"

बड़ा अच्छा वाक्य लगा।

इसके बाद एक पर एक वाक्य आते गये।

स्वच्छता क्यों चाहिए ?

उसके क्या-क्या फायदे होते हैं ?

स्वास्थ्य कैसे अच्छा रहता है ?

यह सब पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई कि अब सिनेमा का उपयोग शिक्षण के लिए हो रहा है।

अपनी खुशी पास में बैठे व्यक्ति के समक्ष व्यक्त करने ही वाला था कि आगे का वाक्य निकला—"इसलिए लक्स साबुन खरीदो।"

प्रचार की प्रमुखता ने समझने-समझाने की सारी भूमिका बदल दी।

और मैं अपनी खुशी मन-ही-मन में लेकर लौट आया। ●

४४. चित्र एक : चेहरे दो

एक मन्दिर था। उसमें एक ऐसी तसवीर थी, जो एक बाजू से देखने पर लक्ष्मी दीखती थी और दूसरी बाजू से देखने पर सरस्वती।

एक दिन दो दर्शनार्थी आये। एक इस तरफ के दरवाजे से और दूसरा उस तरफ के दरवाजे से।

लक्ष्मी की तरफ खड़ा आदमी कहने लगा—"वाह भाई! क्या कमल की शोभा है! और फिर उस पर लक्ष्मी का विराजमान होना ...."

सरस्वती की तरफ खड़े आदमी ने जैसे ही वह बात सुनी तो उसे शक होने लगा कि "कहीं लक्ष्मी की स्तुति करनेवाला होश में है या नहीं? सामने मोर है और वह कमल कह रहा है। मोर पर सरस्वती विराजमान है और वह कहता है कि लक्ष्मी है। है कुछ और कह कुछ रहा है। शायद कुछ पीकर आया हो।"

"वाह, क्या शोभा है और पास खड़े हाथी की सूँड़ कितनी सुन्दर है!"—इसके आगे सुनने का धीरज जब सरस्वती के भक्त में नहीं रह गया तो वह एक कदम आगे बढ़कर बोला—"क्यों भाई, मन्दिर में कोई नशा करके आता है? भले आदमी, कम-से-कम यहाँ तो बगैर नशा किये आना चाहिए।"

इस पर पहला गरज उठा—"तुमने नशा किया होगा, तुम्हारे बाप ने किया होगा।"

कहासुनी के बाद बात हाथापाई तक पहुँच गयी। उठा-पटक में इधर का उस तरफ गिर गया और उधर का इस तरफ। दोनों को चोटें आयीं। दोनों लहूलुहान हो गये। जितना विषैला खून था, बह गया।

होश ठिकाने आने पर लक्ष्मी-भक्त ने देखा—अरे! इस तरफ तो सचमुच सरस्वती है।

सरस्वती-भक्त ने भी आँखें मलकर देखा तो सामने लक्ष्मी थी।

दोनों कहने लगे—"अरे भाई, आप भी ठीक कह रहे थे। लेकिन ...."

तीसरा आदमी बाजू में खड़े-खड़े तमाशा देख रहा था, वह बीच ही में बोल पड़ा—"बुद्धि का औदार्य न होने से ही यह गलती हुई। इसलिए इसमें दोष न आपका है और न इनका। आप दोनों ने पहले ही एक-दूसरे की जगह जाकर देखा होता तो उसी समय गलती ध्यान में आ जाती।"

'जब से जगे रे भाई तब से सबेरा' कहते हुए दोनों उठे और अपूर्णता के लिए अफसोस करते हुए वे अपने-अपने घर चल दिये।

४५. शिक्षक का स्थान

बात है तब की, जब मैं राष्ट्रीय शाला में पढ़ाता था। स्वतन्त्रता की लड़ाई के दौरान वैसी राष्ट्रीय शालाओं की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

एक दफा विनोबा हमारी शाला में आये।

उन्होंने विद्यार्थियों से कुछ सवाल पूछे।

किसीको उत्तर नहीं सूझा।

तब मैं ही बोला—"इन सवालों के जवाब जब मुझे ही नहीं मालूम तो ये लड़के क्या जवाब देंगे ? जल कुएँ में ही नहीं है तो डोल में कहाँ से आयेगा ?"

"आप बहुत अहंकारी लग रहे हैं, जो अपने को कुआँ समझ रहे हैं।"--विनोबा ने कहा—"आप कुआँ भी नहीं हैं और डोल भी नहीं हैं।"

"तो फिर हमारा स्थान क्या है ?"--मैंने पूछा।

विनोबा ने बताया—"आपका स्थान रस्सी का है। आप विद्यार्थियों को कुएँ के पानी तक पहुँचाते हैं। इसमें रस्सी को जितना पानी लग जाता है, उतना ही है आपका ज्ञान।"

विनोबा की इस व्याख्या ने हमें आत्मविभोर कर दिया। ●

४६. अनुत्तरित प्रश्न

अमेरिका से एक लड़की विनोबा को देखने आयी। उस समय हम पटना में थे। वह हमसे भी मिली। कहने लगी—"आपका देश देखने आयी हूँ।"

मैंने कहा—"बड़ी गलती की।"

"कैसे ?"

मैं बोला—"अमेरिका में बैठकर हमारे देश का जो सुन्दर चित्र तुमने देखा होगा, वह यहाँ आने के बाद धुल गया होगा।"

"हाँ, हुआ तो ऐसा ही है।"—कहते-कहते वह रो पड़ी—"मैंने समझा था कि भारत बड़ा करुणावान् देश होगा। लेकिन यहाँ गधे, गाय और सुअर की जो दुर्दशा देखी, वह मैं कभी नहीं भूल सकती। रिक्शे में बैठनेवाली पाँच-पाँच सवारियाँ देखीं, मरियल घोड़े के ताँगे में दस-दस आदमियों को बैठे देखा तो इस नतीजे पर पहुँचने के लिए बाध्य हूँ कि यहाँ किसीके दिल में दया नहीं है।"

अस्वच्छता वगैरह की बात तो उसने छोड़ ही दी।

मुझसे पूछने लगी—"आखिर यहाँ के लोगों को अभिमान किस बात का है ?"

अतीत की चर्चा के प्रसंग में मैंने बताया—"यहाँ के लोगों को इस बात का अभिमान है कि एक जमाना ऐसा था, जब

यहाँ की सड़कों पर इत्र छिड़का जाता था, सोने का धुआँ निकलता था और घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। वह दिन दुबारा यहाँ के लोग देखना चाहते हैं।"

"इसमें कोई संस्कृति नहीं है।"—उसने अपनी बात पर जोर देकर कहा--"और न इसके लिए सदाचार की ही आवश्यकता है। मुसलमान की कुरान में, ईसाइयों की बाइबिल में, आपके वेद और पुराणों में स्वर्ग का जो चित्र खींचा है, मेरी अमेरिका में वह वास्तविकता है।"

सदाचार की प्रेरणा क्या हो? काम की प्रेरणा क्या हो? काम में पवित्रता और आनन्द कैसे आये? इन प्रश्नों का उत्तर ही उस लड़की को समाधान दे सकता था और यह उत्तर देने के लिए अभी हमारे देश के आम नागरिक में जो जिम्मेवारी का एहसास चाहिए, वह है कहाँ?

लड़की अपने देश लौट गयी, लेकिन उसका अनुत्तरित प्रश्न लगता है कि हमारी संस्कृति के समक्ष आज भी ज्यों-का-त्यों खड़ा है।

●

आचार्य दादा धर्माधिकारी सर्वोदय-शास्त्र के विद्वान् व्याख्याता हैं। उनकी विनोदभरी 'हितं मनोहारि' शैली सबको मंत्र-मुग्ध कर लेती है। जैसे उनके विचार स्वतंत्र और अद्यतन हैं, वैसे ही उनका प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली और सुव्यवस्थित है।

विचार देने की अपेक्षा विचार करने की शक्ति निर्माण करने के हिमायती दादा के कथा-सूत्र में मानवीय मूल्यों का तलस्पर्शी और व्यापक सन्दर्भ है। इससे सम्पूर्ण क्रान्ति का अधिष्ठान समझने की दृष्टि मिल सकती है।

सर्व सेवा संघ
प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

मूल्य
दो रुपये मात्र